प्रकाशक
साहित्य भवन लिमिटेड,
प्रयाग ।

प्रथम संस्करण : १९३१
दूसरा संस्करण : १९३७
तीसरा संस्करण : १९३८
चौथा संस्करण : १९४१
पाँचवां संस्करण : १९४४
छठवाँ संस्करण : १९४८

मूल्य साढ़े तीन रुपये

मुद्रक
जगतनारायण लाल,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग ।

श्रीमान् डाक्टर ताराचन्द

एम्० ए०, डी० फिल्० (आक्सन)

की सेवा में सादर

समर्पित

रामकुमार

'कबीर का रहस्यवाद' का छठाँ संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता है, और आशा है जिस भाँति पाठकों तथा विद्वानों ने पूर्व संस्करण को अपनाया है उसी भाँति इसे भी अपनाकर हमारे उत्साह को बढ़ाएँगे।

पुरुषोत्तमदास टंडन
मंत्री
साहित्य भवन लि० प्रयाग।

चौथे संस्करण की भूमिका

मुझे प्रसन्नता है कि इस पुस्तक ने कबीर की कविता और उसके दृष्टिकोण के संबन्ध में बहुत सी भ्रांतियाँ दूर की हैं। अब यह पुस्तक नये संस्करण में विद्वानों की सेवा में जा रही है।

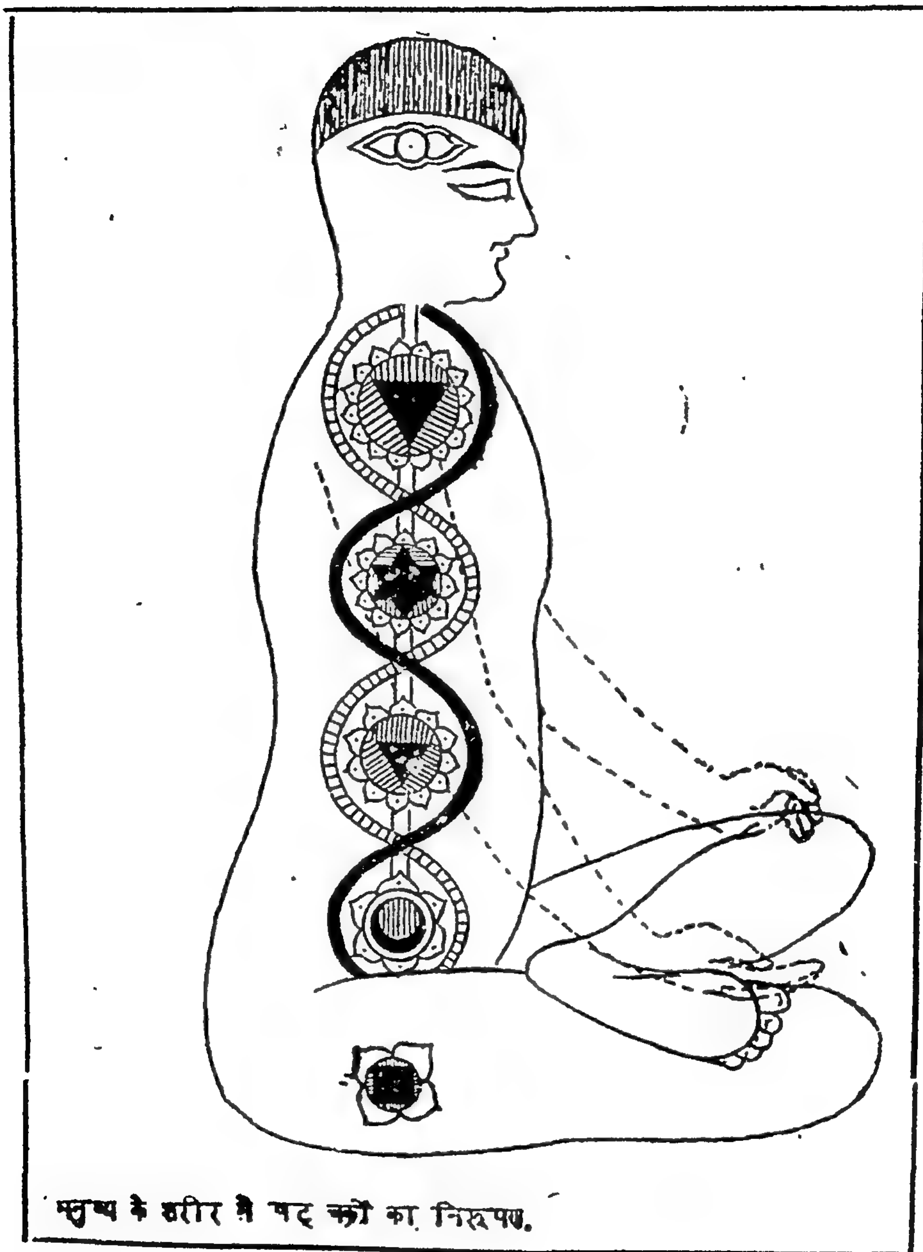
हिन्दी विभाग
२४-१०-४१

रामकुमार वर्मा

ॐ रहस्यवाद आत्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है
जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत
और निश्छल संवन्ध जोड़ना चाहती है और यह
संवन्ध यहाँ तक वढ़ जाता है कि दोनों
में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता।

कबीर का रहस्यवाद

विषय सूची



मनुष्य के शरीर में षट् चक्रों का निरूपण.

नाड़ियों सहित मनुष्य के शरीर षट् चक्र

चित्र २

कबीर का रहस्यवाद

कहत कबीर यहु अकथ कथा है,
कहता कही न जाई।

—कबीर

कबीर के समालोचकों ने अभी तक कबीर के शब्दों को तानपूरे पर गाने की चीज़ ही समझ रक्खा है पर यदि वास्तव में देखा जाय तो कबीर का विश्लेषण बहुत ही कठिन है। वह इतना गूढ़ और गंभीर है कि उसकी शक्ति का परिचय पाना एक प्रश्न हो जाता है। साधारण समझने वालों की बुद्धि के लिए वह उतना ही अग्राह्य है जितना कि शिशुओं के लिए माँसाहार। ऐसी स्वतंत्र प्रवृत्ति वाला कलाकार किसी साहित्य-क्षेत्र में नहीं पाया गया। वह किन किन स्थलों में विहार करता है, कहाँ कहाँ सोचने के लिए जाता है, किस प्रशान्त वन-भूमि के वातावरण में गाता है, ये सब स्वतंत्रता के साधन उसी को ज्ञात थे, किसी अन्य को नहीं। उसकी शैली भी इतना अपना-पन लिए हुए है कि कोई उसकी नक़ल भी नहीं कर सकता। अपना विचित्र शब्द-जाल, अपना स्वतंत्र भावोन्माद, अपना निर्भय आलाप, अपने भाव-पूर्ण पर बेढंगे चित्र, ये सभी उसके व्यक्तित्व से ओत-प्रोत थे। कला के क्षेत्र का सब कुछ उसी का था। छोटी से छोटी वस्तु अपनी लेखनी से उठाना, छोटी से छोटी विचारावली पर मनन करना उसकी कला का आवश्यक अंग था। किसी अन्य कलाकार अथवा चित्रकार पर आश्रित होकर उसने अपने भावों का प्रकाशन नहीं किया। वह पूर्ण सत्यवादी था; वह स्वाधीन चित्रकार था। अपने ही हाथों से तूलिका साफ़ करना, अपने ही हाथों चित्र-पट की धूल झाड़ना, अपने ही हाथों से रंग तैयार करना—जैसे उसने अपने कार्य के लिए किसी दूसरे की आवश्यकता समझी ही नहीं। इसीलिए तो उसकी कविता इतना अपना-पन लिए हुए है!

कबीर अपनी आत्मा का सबसे आज्ञाकारी सेवक था। उसकी आत्मा से जो ध्वनि निकली उसका निर्वाह उसने बहुत ख़ूबी के साथ किया। उसे यह

चिन्ता नहीं थी कि लोग क्या कहेंगे, उसे यह भी डर नहीं था कि जिस समाज में मैं रह रहा हूँ उस पर इतना कटुतर वाक्य-प्रहार क्यों करूँ ? उसकी आत्मा से जो ध्वनि निकली उसी पर उसने मनन किया, उसी का प्रचार किया और उसी को उसने लोगों के सामने ज़ोरदार शब्दों में रक्खा। न उसने कभी अपने को धोखा दिया और न कभी समाज के कारण अपने विचारों में कुछ परिवर्तन ही किया। यद्यपि वह अपढ़ रहस्यवादी था, उसने 'मसि-कागद' छुआ भी नहीं था, तथापि उसके विचारों की समानता रखने वाले कितने कवि हुए हैं! जहाँ कहीं भी हम उसे पाते हैं वहाँ वह अपने पैरों पर खड़ा है, किसी का लेश-मात्र भी सहारा नहीं है।

काव्य के अनुसार जितने विभाग हो सकते हैं उतने विभाग कबीर के सामने रखिए, किसी विभाग में भी कबीर नहीं आ सकते। बात यह नहीं है कि कबीर में उन विभागों में आने की क्षमता ही नहीं है पर बात यह है कि उसने उनमें आना स्वीकार ही नहीं किया। उसने साहित्य के लिए नहीं गाया; किसी कवि की हैसियत से नहीं लिखा, चित्रकार की हैसियत से चित्र नहीं खींचे। जो कुछ भी उस रहस्यवादी के हृदय से निकला वह इस विचार से कि अनंत शक्ति एक सत्पुरुष का संदेश लोगों को किस प्रकार दिया जाय, उस सत्पुरुष का व्यक्तित्व किस प्रकार प्रकट किया जाय, ईश्वर की प्राप्ति के लिए किस प्रकार लोगों से भेद-भाव हटाया जाय, "एक बिन्दु से विश्व रच्यो है को बाम्हन को सूद्रा" का प्रतिपादन किस प्रकार किया जाय, सत्य की मीमांसा का क्या रूप हो सकता है, माया किस प्रकार सारहीन चित्रित की जा सकती है, यही उसका विचार था जिस पर उसने अपने विश्वास की मज़बूत दीवाल उठाई थी।

कबीर की प्रतिभा का परिचय न पा सकने का एक कारण और है। वह यह कि लोग उसे अभी तक समझ ही नहीं सके हैं। 'रमैनी' और 'शब्दों' में उसने ईश्वर और माया की जो मीमांसा की है, वह साधारण लोगों की बुद्धि के बाहर की बात है।

दुलहनी गावहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा राम भतार।
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ पंचतत बराती,
रामदेव मोरे पाहुने आए, मैं जोबन में माती,

सरीर सरोवर वेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचार;
रामदेव सँगि भाँवर लेहूँ, धनि धनि भाग हमार,
सुर तेतीसूँ कौतिक आए, मुनिवर सहस अठासी;
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी ॥[1]

साधारण पाठक इस रहस्यमयी मीमांसा को सुलझाने में सर्वथा असफल हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि जो 'उल्टवाँसियाँ' कबीर ने लिखी हैं उनकी कुंजियाँ प्रायः ऐसे साधु और महंतों के पास हैं जो किसी को बतलाना नहीं चाहते, अथवा ऐसे साधु और महंत अब हैं ही नहीं।

निम्नलिखित उल्टवाँसी का अर्थ अनुमान से अवश्य लगाया जा सकता है, पर कबीर का अभिप्राय क्या था, यह कहना कठिन है :—

अवधू वो तत्तु रावल राता।
नाचे बाजन बाजु बराता ॥
मौर के मांथे दुलहा दीन्हा।
अकथ जोरि कहाता ॥
मँड़ये के चारन समधी दीन्हा
पुत्र व्याहिल माता ॥
दुलहिन लीपि चौक बैठारी,
निर्भय पद परकासा।
भाते उलटि बरातिहिं खायो,
भली बनी कुशलाता ॥
पाणिग्रहण भयो भौ मंडन,
सुषमनि सुरति समानी।
कहहिं कबीर सुनो हो संतो
बूझो पण्डित ज्ञानी ॥[2]

राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए० ने अपने कबीर शीर्षक लेख

---

[1] कबीर ग्रन्थावली (नागरी प्रचारिणी सभा), पृष्ठ ८७।
[2] बीजक मूल (श्रीवेंकटेश्वर प्रेस) सं० १९६९, पृष्ठ ७४-७५

में इसे योग की परिस्थितियों का चित्रण माना है।[1]

एक बात और है। कबीर ने आत्मा का वर्णन किया, शरीर का नहीं। वे हृदय की सूक्ष्म भावनाओं की तह तक पहुँच गए हैं। 'नख-शिख' अथवा शरीर-सौंदर्य के झमेले में नहीं पड़े। यदि शरीर अथवा 'नख शिख' वर्णन होता तो उसका निरूपण सहज ही में हो सकता था। ऐसा सिर है, ऐसी आँखें हैं, ऐसे कपोल हैं, अथवा कमल-नेत्र हैं, कलभ-कर बाहु हैं, वृषभ-कंध है। किंतु आत्मा का सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। उस तक पहुँच पाना बड़े बड़े योगियों की शक्ति के बाहर है। ऐसी स्थिति में कबीर ने एक रहस्यवादी बन कर जिन जिन परिस्थितियों में आत्मा का वर्णन किया है वे कितने लोगों की समझ में आ सकती हैं? शरीर का स्पर्श तो इन्द्रियों द्वारा किया जा सकता है पर आत्मा का निरूपण करना बहुत कठिन है। आध्यात्मिक शक्तियों द्वारा ही आत्मा का कुछ कुछ परिचय पाया जा सकता है। आध्यात्मिक शक्तियाँ सभी मनुष्यों में नहीं रह सकतीं। इसीलिए सब लोग कबीर की कविता की थाह सफल रूप से कभी न ले सकेंगे।

आत्मा का निरूपण करना कबीर के लिए कहाँ तक सफलता का द्वार खोल सका, यह एक दूसरा प्रश्न है। कबीर का सार-भूत विचार यही था कि वे किस प्रकार मनुष्य की आत्मा को प्रकाश में ला दें। यह बात सत्य है कि कभी कभी उस आत्मा का चित्र धुँधला उतरता है, कभी हम उसे पहिचान ही नहीं सकते। किसी स्थान पर वह काले धब्बे का रूप रखता है। किसी स्थान पर उस चित्र का ऐसा बेढंगा रूप हो जाता है कि कलाकार की इस परिस्थिति पर हँसने को जी चाहता है, पर अन्य स्थानों पर वह चित्र भी कैसा होता है! प्रातःकालीन सूर्य की सुनहली किरणों की भाँति चमकता हुआ, उषा के रंगीन उड़ते हुए बादलों की भाँति झिलमिलाता हुआ, किसी अंधकारमयी काली गुफा में किरणों की ज्योति की भाँति। इन विभिन्नताओं को सामने रखते हुए, और कबीर की प्रतिभा का वास्तविक परिचय पाने की पूर्ण क्षमता न होते हुए हम एक अंधे के समान ढूँढ़ते हैं कि साहित्य में कबीर का कौन-सा स्थान है!

---

[1] कबीर—रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए० पृष्ठ २४
[कलकत्ता यूनीवर्सिटी प्रेस, १९२८]

इसमें सन्देह है कि कबीर की कल्पना के सारे चित्रों को समझने की शक्ति किसी में आ सकेगी अथवा नहीं। जो हो, कबीर की बानी पढ़ जाने के बाद यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि कबीर के पास कुछ ऐसे चित्रों का कोष है जिसमें हृदय में उथल-पुथल मचा देने की बड़ी भारी शक्ति है। हृदय आश्चर्य-चकित होकर कबीर की बातों को सोचता ही रह जाता है, वह हतबुद्धि होकर अशान्त हो जाता है। उस समय कबीर की प्रतिभा एक अगम्य विशाल वन की भाँति प्रतीत होती है और पाठकों का मस्तिष्क एक भोले और अशक्त बालक की भाँति।

अन्त में यही कहना शेष है कि कबीर ने दार्शनिक लोगों के लिए अपनी कविता नहीं लिखी। उन्होंने कविता लिखी है धार्मिक विचारों से पूर्ण जिज्ञासुओं के लिए। समय बतला देगा कि कबीर की कविता न तो नीरस ज्ञान है और न केवल साधुओं के तानपूरे की चीज़। समालोचकगण कबीर की रचना को सामने रखकर उसके काव्य-रत्नाकर से थोड़े से रत्न पाने का प्रयत्न करें; चाहे वे जगमगाते हुए जीवन के सिद्धांत-रत्न हों या आध्यात्मिक जीवन के झिलमिलाते हुए रत्न-कण।

रहस्यवाद

अब हमें कबीर के रहस्यवाद पर विचार करना है। कबीर की 'वानी' को आद्योपान्त पढ़ जाने पर ज्ञात हो जाता है कि वे सच्चे रहस्यवादी थे। यद्यपि कबीर निरक्षर थे तथापि वे ज्ञान-शून्य नहीं थे। उनके सत्संग, पर्यटन और अनुभव आदि ने उन्हें बहुत ऊपर उठा दिया था। वे एक साधारण व्यक्ति की श्रेणी से परे थे। रामानन्द का शिष्यत्व उनके हिन्दू धार्मिक सिद्धान्तों का कारण था और जुलाहे के घर पालित होना तथा शेख़ तकी आदि सूफ़ियों का सत्संग होना उनके मुसलमानी विचारों से परिचित होने का कारण था।

इस व्यवहार-ज्ञान से ओत-प्रोत होकर उन्होंने अपने धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन बड़ी कुशलता के साथ किया और वह कुशलता भी ऐसी जिसमें कबीर के व्यक्तित्व की छाप लगी हुई है। इसके पहले कि हम कबीर के रहस्यवाद की विवेचना करें, रहस्यवाद के सभी अंगों पर पूरा प्रकाश डालना उचित है।

रहस्यवाद की विवेचना अत्यंत मनोरंजक होने पर भी दुःसाध्य है। वह हमारे सामने एक गहन वन-प्रान्त की भाँति फैली हुई है। उसमें जटिल विचारों की कितनी काली गुफाएँ हैं, कितनी शिलाएँ हैं! उसकी दुर्गमता देख कर हमारे हृदय का निर्बल व्यक्ति थक कर बैठ जाता है। सागर के समान इस विषय का विस्तार विश्व-साहित्य भर में फैला हुआ है। न जाने कितने कवियों के हृदय से रहस्यवाद की भावना निर्झर की भाँति प्रवाहित हुई है। उन्होंने उसके अलौकिक आनंद का अनुभव कर मौन धारण कर लिया है। न जाने कितने योगियों ने इस दैवी अनुभूति के प्रवाह में अपने को वहा दिया है। इसी रहस्यवाद को हम परिभाषा का रूप देना चाहते हैं, एक अमृत-कुण्ड को मिट्टी के घड़े में भरना चाहते हैं।

रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्छल संबंध जोड़ना चाहती है, और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अंतर नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इसी शक्ति के अनंत वैभव और प्रभाव से ओत-प्रोत

परिभाषा

-हो जाती हैं। जीवन में केवल उसी दिव्य शक्ति का अनंत तेज अन्तर्हित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल सा जाती है। एक भावना, एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यंगों में प्रकाशित होती है। यही दिव्य संयोग है! आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाती है कि आत्मा में परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा में आत्मा के गुणों प्रदर्शन। कबीर की उल्टबाँसियाँ प्रायः इसी भावना पर चलती हैं।

संतो जागत नींद न कीजै।
काल नहिं खाई कल्प नहीं व्यापै, देह जरा नहिं छीजै॥
उलटि गंगा समुद्रहि सोखै, शशि और सूर गरासै।
नव ग्रह मारि रोगिया बैठे, जल में बिंब प्रकासै॥
बिनु चरणन के दुहुँ दिस धावै, बिनु लोचन जग सूझै।
ससा उलटि सिंह को ग्रासै, है अचरज कोऊ बूझै॥

इस संयोग में एक प्रकार का उन्माद होता है, नशा रहता है। उस एकांत सत्य से, उस दिव्य-शक्ति से जीव का ऐसा प्रेम हो जाता है कि वह अपनी सत्ता परमात्मा की सत्ता में अन्तर्हित कर देता है। उस प्रेम में चंचलता नहीं रहती, अस्थिरता नहीं रहती। वह प्रेम अमर होता है।

ऐसे प्रेम में जीव की सारी इंद्रियों का एकीकरण हो जाता है। सारी इंद्रियों से एक स्वर निकलता है और उनमें अपने प्रेम की वस्तु के पाने की लालसा समान रूप से होने लगती है। इंद्रियाँ अपने आराध्य के प्रेम को पाने के लिए उत्सुक हो जाती हैं और उनकी उत्सुकता इतनी बढ़ जाती है कि वे उसके विविध गुणों का ग्रहण समान रूप से करती हैं। अंत में वह सीमा इस स्थिति को पहुँचती है कि भावोन्माद में वस्तुओं के विविध गुण एक ही इंद्रिय पाने की क्षमता प्राप्त कर लेती है। ऐसी दशा में शायद इंद्रियाँ भी अपना कार्य बदल देती हैं। एक बार प्रोफ़ेसर जेम्स ने यही समस्या आदर्शवादियों के सामने सुलझाने के लिए रक्खी थी कि यदि इंद्रियाँ अपनी अपनी कार्य-शक्ति एक दूसरे से बदल लें तो संसार में क्या परिवर्तन हो जायँगे? उदाहरणार्थ, यदि हम रंगों को सुनने लगें और ध्वनियों को देखने लगें तो हमारे जीवन में क्या अन्तर आ जायगा! इसी विचार के सहारे हम सेंट मार्टिन का रहस्यवाद से संबंध रखने वाली परिस्थिति समझ सकते हैं जब उन्होंने कहा था:

[1]मैंने उन फूलों को सुना जो शब्द करते थे और उन ध्वनियों को देखा जो जाज्वल्यमान थीं।

अन्य रहस्यवादियों का भी कथन है कि उस दिव्य अनुभूति में इंद्रियाँ अपना काम करना भूल जाती हैं। वे निस्तब्ध-सी होकर अपने कार्य-व्यापार ही को नहीं समझ सकतीं। ऐसी स्थिति में आश्चर्य ही क्या कि इंद्रियाँ अपना कार्य अव्यवस्थित रूप से करने लगें! इसी बात से हम उस दिव्य अनुभूति के आनंद का परिचय पा सकते हैं जिसमें हमारी सारी इंद्रियाँ मिल कर एक हो जाती हैं, अपना कार्य-व्यापार भूल जाती हैं। जब हम उस अनुभूति का विश्लेषण करने बैठते हैं तो उसमें हमें न जाने कितने गूढ़ रहस्यों और आश्चर्यमय व्यापारों का पता लगता है।

फ़ारसी में शमसी तबरीज़ की कविता में उक्त विचारों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है:—

[2]उसके संमिलन की स्मृति में,
उसके सौन्दर्य की आकांक्षा में
वे उस मदिरा को—जिसे तू जानता है—

---

[1]I heard flowers that sounded and saw notes that shone. अंडरहिल रचित मिस्टिसिज़्म पृष्ठ ८.

بیاد بزم وصالش در آرزوے جمالش
فتادہ بے خبرانند ز آں شراب کہ دانی
چہ خوش بود کہ بپویش بر آستانۂ کویش
براے دیدن رویش شبے بروز رسانی
حواس جملۂ خود وا بنور جان تو بر افروز

ब यादे बज़्मे विसालश् दर आरज़ू ए जमालश्
.फ़ुतादा बे ख़बर अंद ज़ आं शराब कि दानी
चि ख़ुश बूअद कि बपूयश बर आस्तान ए कूयश
बराए दीदने रूयश शबे बरोज़ रसानी
हवासे .जुमल ए .खुद रा बनूरे जाने तो बर अफ़रोज़
... ...
दीवाने शमसी तबरीज़, पृष्ठ १७६

पीकर बेसुध पड़े हैं।
कैसा अच्छा हो कि उसकी गली के द्वार पर
उसका मुख देखने के लिए
वह रात को दिन तक पहुँचा दे।
तू अपने
शरीर की इंद्रियों को
आत्मा की ज्योति से जगमगा दे।

रहस्यवाद के उन्माद में जीव इंद्रिय-जगत से बहुत ऊपर उठ कर विचार-शक्ति और भावनाओं का एकीकरण कर अनंत और अंतिम प्रेम के आधार में मिल जाना चाहता है। यही उसकी साधना है, यही उसका उद्देश्य है। उसमें जीव अपनी सत्ता को खो देता है। मैं, मेरा, और मुझे का विनाश रहस्यवाद का एक आवश्यक अंग है। एक अपरिमित शक्ति की गोद ही में 'मैं' और 'मेरा' सदैव के लिए अन्तर्हित हो जाता है। वहाँ जीव अपना आधिपत्य नहीं रख सकता। एक सेवक की भाँति अपने को स्वामी के चरणों में भुला देना चाहता है। संसार के इन बाह्य बन्धनों का विनाश कर आत्मा ऊपर उठती है, हृदय की भावना साकार बन कर ऊपर की ओर जाती है केवल इसलिए कि वह अपनी सत्ता एक असीम शक्ति के आगे डाल दे। हृदय की इस गति में कोई स्वार्थ नहीं, संसार की कोई वासना नहीं, कोई सिद्धि नहीं, किसी ऐश्वर्य की प्राप्ति नहीं, केवल हृदय के प्रेम की पूर्ति है। और ऐसा हृदय वह चीज़ है जिसमें केवल भावनाओं का केंद्र ही नहीं वरन् जीवन की वह अंतरंग अभिव्यक्ति है जिसके सहारे संसार के बाह्य पदार्थों में उसकी सत्ता निर्धारित होती है। अनंत सत्ता के सामने जीव अपने को इतने समीप ला देता है कि उसको साधारण से साधारण भावना में अनंत शक्ति की अनुभूति होने लगती है। अंग्रेज़ी के एक कवि कौलरिज ने इसी भावना को इस प्रकार प्रकट किया है:—

[१]"हम अनुभव करते हैं कि हम कुछ नहीं हैं,
क्योंकि तू सब कुछ है और सब कुछ तुझ में है।

---

१ We feel we are nothing for all is
Thou and in Thee.

हम अनुभव करते हैं कि हम कुछ हैं,
वह भी तुझसे प्राप्त हुआ है।
हम जानते हैं कि हम कुछ भी नहीं हैं,
परन्तु तू हमें अस्तित्व प्राप्त करने में सहायक होगा।
तेरे पवित्र नाम की जय हो!"

कबीर की निम्नलिखित प्रसिद्ध पंक्तियाँ इस विचार को कितने सरल और स्पष्ट रूप से सामने रखती हैं :—

लोका जानि न भूलौ भाई,
खालिक खलक, खलक में खालिक
सब घट रह्यो समाई।

अतएव हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि रहस्यवाद अपने नग्न स्वरूप में एक अलौकिक विज्ञान है जिसमें अनंत के संबन्ध की भावना का प्रादुर्भाव होता है और रहस्यवादी वह व्यक्ति है जो इस संबन्ध के अत्यन्त निकट पहुँचता है। उसे कहता ही नहीं, उसे जानता ही नहीं वरन् उस संबन्ध ही का रूप धारण कर वह अपनी आत्मा को भूल जाता है।

अब हमें ऐसी स्थिति का पता लगाना है जहाँ आत्मा भौतिक बन्धनों का बहिष्कार कर, संसार के नियमों का प्रतिकार कर, ऊपर उठती है और उस अनंत जीवन में प्रवेश करती है जहाँ आराधक और आराध्य एक हो जाते हैं, जहाँ आत्मा और अनंत शक्ति का एकीकरण हो जाता है। जहाँ आत्मा यह भूल जाती है कि वह संसार की निवासिनी है और उसका इस दैवी वातावरण में आना एक अतिथि के आने के समान है। वह यह बोलने लगती है कि—

मैं सबनि औरनि मैं हूँ सब,
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो।

We feel we are something, that also
has come from Thee.
We know we are nothing, but Thou
wilt help us to be.
Hallowed be Thy name halleluiah.

कोई कहौ कबीर कोई कहौ रामराई हो।
ना हम बार बूढ़ नाहीं हम,
ना हमरे चिलकाई हो।
पटरा न जाऊँ अरवा नहीं आऊँ,
सहजि रहूँ हरि भाई हो।
वोढ़न हमरै एक पछेवरा,
लोग बोलैं इकताई हो।
जुलहै तनि बुनि पान न पावल,
फारि बुनी दस ढाई हो।
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल,
तब हमरौ नाम रामराई हो।
जग मैं देखौं जग न देखै मोहि,
इहि कबीर कछु पाई हो।

अँग्रेज़ी में जार्ज हरबर्ट ने भी ऐसा कहा है :—

[1]'ओ! अब भी मेरे हो जाओ, अब भी मुझे अपना बना लो, इस 'मेरे' और 'तेरे' का भेद ही न रक्खो।'

ऐसी स्थिति का निश्चित रूप से निर्देश नहीं किया जा सकता। इस संयोग के पास पहुँचने के पूर्व न जाने कितनी दशाएँ, उनमें भी न जाने कितनी अन्तर्दशाएँ हैं, जिनसे रहस्यवाद के उपासक अपनी शक्ति भर ईश्वरीय अनुभूति पाना चाहते हैं। इसीलिए रहस्यवादियों की उत्कृष्टता में अंतर जान पड़ता है। कोई केवल ईश्वर की अनुभूति करता है, कोई उसे केवल प्यार कर सकने योग्य बन सका है, कोई अभिन्नता की स्थिति पर है और कोई पूर्ण रूप से आराध्य के आधीन है। सेंट आगस्टाईन, कबीर, जलालुद्दीन रूमी यद्यपि ऊँचे रहस्यवादी थे तथापि उनकी स्थितियों में अंतर था।

हम रहस्यवादियों की उद्देश्य-प्राप्ति में तीन परिस्थितियों की कल्पना कर सकते हैं। पहली परिस्थिति तो वह है जहाँ वह व्यक्ति-विशेष अनंत

---

[1]O, be mine still, still make me thine
Or rather make no thine or mine.
(George Herbert)

शक्ति से अपना संबंध जोड़ने के लिए अग्रसर होता है। वह संसार की सीमा को पार कर ऐसे लोक में पहुँचता है जहाँ भौतिक बंधन नहीं, जहाँ संसार के नियम नहीं, जहाँ उसे अपने शारीरिक अवरोधों की परवाह नहीं है। वह ईश्वर के समीप पहुँचता है और दिव्य-विभूतियों को देख कर चकित हो जाता है। यह रहस्यवादी की प्रथम परिस्थिति है। इस परिस्थिति का वर्णन कबीर ने बड़ी सुंदर रीति से किया है :—

परिस्थिति

घट घट में रटना लागि रही,
परघट हुआ अलेख जी।
कहुँ चोर हुआ, कहुँ साह हुआ,
कहुँ बाम्हन है कहुँ सेख जी॥

कहने का तात्पर्य यह है कि यहाँ संसार की सभी वस्तुएँ अनंत शक्ति में विश्राम पाती हैं और सभी अनंत सत्ता में आकर मिल जाती हैं। यहाँ रहस्यवादी ने अपने लिए कुछ भी नहीं कहा है, वह चुप है। उसे ईश्वर की इस अनंत शक्ति पर आश्चर्य-सा होता है। वह मौन होकर इन बातों को देखता-सुनता है। यद्यपि ऐसे समय वह अपना व्यक्तित्व भूल जाता है पर ईश्वर की अनुभूति स्वयं अपने हृदय में पाने में असमर्थ रहता है। इसे हम रहस्यवादियों की प्रथम स्थिति कहेंगे।

द्वितीय स्थिति तब आती है जब आत्मा परमात्मा से प्रेम करने लग जाती है। भावनाएँ इतनी तीव्र हो जाती हैं कि आत्मा में एक प्रकार का उन्माद या पागलपन छा जाता है। आत्मा मानों प्रकृति का रूप रख पुरुष—आदि पुरुष—से प्यार करती है। संसार की अन्य वस्तुएँ उसकी नज़र से हट जाती हैं। आश्चर्य चकित होने की अवस्था निकल जाती है और रहस्यवादी चुपचाप अपने आराध्य को प्यार करने लग जाता है। वह प्यार इतना प्रबल होता है कि उसके समक्ष विश्व की कोई चीज़ स्थिर नहीं रह सकती। वह प्रेम बरसात के उस प्रबल नाले की भाँति होता है जिसके सामने कोई भी वस्तु नहीं ठहर सकती—पेड़, पत्थर, झाड़, झंखाड़ सब उस प्रवाह में बह जाते हैं। उसी प्रकार इस प्रेम के आगे कोई भी वासना नहीं ठहर सकती। सभी भावनाएँ, हृदय की सभी वासनाएँ बड़े ज़ोर से एक ओर को बह जाती हैं और एक—केवल एक—भाव रह जाता

है, और वह है प्रेम का प्रबल प्रवाह। जिस प्रकार किसी जल-प्रपात के शब्द में समीप के सभी छोटे-छोटे स्वर अन्तर्हित ही हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार उस ईश्वरीय प्रेम में सारे विचार या तो लुप्त ही हो जाते हैं अथवा उसी प्रेम के बहाव में बह जाते हैं। फिर कोई भावना उस प्रेम के प्रबल प्रवाह के रोकने को आगे नहीं आ सकती।

रेनाल्ड ए० निकल्सन ने लंडन यूनीवर्सिटी में "सूफ़ीमत में व्यक्तित्व" पर तीन भाषण दिये थे। वे सूफ़ीमत के सम्बन्ध में कहते हैं :—

[1]यह सत्य है कि परमात्मा के मिलापानुभव में मध्यस्थ के लिए कोई स्थान नहीं है। वहाँ तो केवल एकान्त देवी सम्मिलन की अनुभूति ही हृदयगम होती है वस्तुतः हम यह भावना विशेषकर प्राचीन सूफ़ियों में पाते हैं कि परमात्मा ही उपासना की एक मात्र वस्तु हो, दूसरी वस्तुओं का ध्यान करना उसके प्रति अपराध करना है।

'तज़किरातुल औलिया' से भी इसी मत की पुष्टि होती है। उसमें बसरा की स्त्री-संत राबेआ के विषय में लिखा है :—

[2]कहा है कि उसने (राबेआ ने) कहा—रसूल को मैंने स्वप्न में देखा। रसूल ने पूछा, "ऐ राबेआ, मुझसे मैत्री रखती हो?"

---

[1]It is true that in the experience of union with God, there is no room for a Mediator. Here the absolute Divine Unity is realised. And, of course, we find especially among the ancient Sufis, a feeling that God must be the sole object of adoration, that any regard for other objects is an offence against Him.

रिनाल्ड ए० निकल्सन रचित "दि आइडिया आव् पर्सनालिटी इन सूफ़ीज़्म", पृष्ठ ६२

[2]نقل است کہ گفت رسول را بخواب دیدم گفت یارا بعہ مرا دوست داری
گفتم یا رسول اللہ کہ بود ترا دوست ندارد لیکن محبت حق مرا چناں فرو گرفتہ
است کہ دشمنی و دوستی غیر اور در دل جاے نماندہ است -

नक़्ल अस्त कि गुफ़्त रसूल रा बख़्वाब दीदम गुफ़्त या राबेआ, मरा

जवाब दिया "ऐ अल्लाह के रसूल, कौन है जो तुमसे मैत्री नहीं रखता, किन्तु ईश्वर के प्रेम ने मुझे ऐसा बाँध लिया है कि उससे अन्य के लिए मेरे हृदय में मित्रता अथवा शत्रुता का स्थान नहीं रह गया है।।"

रहस्यवादी की यह एक गंभीर परिस्थिति है जहाँ वह अपने आराध्य के प्रेम से इतना ओत-प्रोत हो जाता है कि उसे अन्य कुछ सोचने का अवकाश ही नहीं मिलता।

इसके पश्चात् रहस्यवादियों की तीसरी स्थिति आती है जो रहस्यवाद की चरम सीमा कहला सकती है। इस दशा में आत्मा और परमात्मा का इतना एकीकरण हो जाता है कि फिर उनमें कोई भिन्नता नहीं रहती। आत्मा अपने में परमात्मा का अस्तित्व मानती है और परमात्मा के गुणों को प्रकट करती है। जिस प्रकार प्रारंभिक अवस्था में आग और लोहे का एक गोला, ये दोनों भिन्न हैं पर जब आग से तपाये जाने पर गोला भी लाल होकर अग्नि का स्वरूप धारण कर लेता है तब उस लोहे के गोले में वस्तुओं के जलाने की वही शक्ति आ जाती है जो आग में है। यदि गोला आग से अलग भी रख दिया जाय तो भी वह लाल स्वरूप रखकर अपने चारों ओर आँच फेंकता रहेगा। यही हाल आत्मा और परमात्मा के संसर्ग से होता है। यद्यपि प्रारंभिक अवस्था में माया के वातावरण में आत्मा और परमात्मा दो भिन्न शक्तियाँ जान पड़ती हैं पर जब दोनों आपस में मिलती हैं तो परमात्मा के गुणों का प्रवाह आत्मा में इतने अधिक वेग से होता है कि आत्मा के स्वाभाविक निज के गुण तो लुप्त हो जाते हैं और परमात्मा के गुण प्रकट जान पड़ते हैं। यही अभिन्न संबंध रहस्यवादियों की चरम सीमा है। इसका फल क्या होता है!

—गंभीर एकान्त सत्य का परिचय

—पर शान्ति की अवतारणा

दोस्त दारी—गुफ़्तम या रसूल अल्लाह कि बूअद तुरा दोस्त न दारद। लेकिन मुहब्बते हक मरा चुनां फ़रोगिरिफ़्ता कस्त कि दुश्मनी व दोस्ती ए ग़ैरे ऊरा दर दिलम जाय न मांदा अस्त॥

तजकिरातुल औलिया, पृष्ठ ४६

मत्वा मुजतबाई देहली,

मुहम्मद अब्दुल अहद द्वारा सम्पादित, १३१७ हिजरी।

—जीवन में अनंत शक्ति और चेतना
—प्रेम का अभूतपूर्व आविर्भाव
—श्रद्धा और भय......

—भय, वह भय नहीं जिससे जीवन की शक्तियों का नाश हो जाता है किंतु वह भय जो आश्चर्य से प्रादुर्भूत होता है और जिसमें प्रेम, श्रद्धा और आदर की महान् शक्तियाँ छिपी रहती हैं। ऐसी स्थिति में जीवन में व्यापक शक्तियाँ आती हैं और आत्मा इस बंधन-मय संसार से ऊपर उठ कर उस लोक में पहुँच जाती है जहाँ प्रेम का अस्तित्व है और जिसके कारण आत्मा और परमात्मा में कुछ भिन्नता प्रतीत नहीं होती। अनंत की दिव्य विभूति जीवन का आवश्यक अंग बनाती है और शरीर की सारी शक्तियाँ निरालम्ब होकर अपने को अनंत की गोद में छोड़ देती हैं।

[1]जिस प्रकार मछलियाँ समुद्र में तैरती हैं, जिस प्रकार पक्षी वायु में झूलते हैं, तेरे आलिंगन से हम विमुख नहीं हो सकते। हम साँस लेते हैं और तू वहाँ वर्तमान है।

इस प्रकार की रहस्यवादी दैवी शक्ति से युक्त होकर संसार के अन्य मनुष्यों से बहुत ऊपर उठ जाता है। उसका अनुभव भी अधिक विस्तृत और अध्यात्मिक हो जाता है। उसका संसार ही दूसरा हो जाता है और वह किसी दूसरे ही वातावरण में विचरण करने लगता है।

किंतु रहस्यवादी की यह अनुभूति व्यक्तिगत ही समझनी चाहिए। उसका एक कारण है। वह अनुभूति इतनी दिव्य, इतनी अलौकिक होती है कि संसार के शब्दों में उसका स्पष्टीकरण असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। वह कांति दिव्य है, अलौकिक है। हम उसे साधारण आँखों से नहीं देख सकते। वह ऐसा गुलाब है जो किसी बाग़ में नहीं लगाया जा सकता, केवल उसकी सुगंधि ही पाई जा सकती है। वह ऐसी सरिता है कि उसे हम किसी प्रशस्त वन में

---

[1] As fishes swim in briny sea
As fouls do float in the air,
From the embrace we can not flee,
We breathe and Thou art there.
(John Stuart Blackie)

नहीं देख सकते वरन् उसे कल-कल नाद करते हुए ही सुन सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि संसार की भाषा इतनी ओछी है कि उसमें हम पूर्ण रीति से रहस्यवाद की अनुभूति प्रकट ही नहीं कर सकते। दूसरी बात यह है कि रहस्यवाद की यह भावुक विवेचना समझने की शक्ति भी तो सर्वसाधारण में नहीं है। रहस्यवादी अपने अलौकिक आनंद में विभोर होकर यदि कुछ कहता है तो लोग उसे पागल समझते हैं। साधारण मनुष्यों के विचार इतने उथले हैं कि उनमें रहस्यवाद की अनुभूति समा ही नहीं सकती। इसीलिए 'अलहल्लाज मंसूर' अपनी अनुभूति का गीत गाते-गाते थक गया पर लोग उसे समझ ही नहीं सके। लोगों ने उसे ईश्वरीय सत्ता का विनाश करनेवाला समझ कर फाँसी दे दी। इसीलिए रहस्यवादियों को अनेक स्थलों पर चुप रहना पड़ता है। उसका कारण वे यही बतला सकते हैं कि:—

'नश्वर स्वर से कैसे गाऊँ आज अनश्वर गीत।'

इस विचार को निकलसन और ली द्वारा सम्पादित और क्लैरंडन प्रेस आक्सफ़र्ड से प्रकाशित 'दि आक्सफ़र्ड बुक अव् इंग्लिश मिस्टिकल वर्स' की प्रस्तावना में हम बड़े अच्छे रूप में पाते है :—

[१]वस्तुतः रहस्यवाद का सारभूत तत्त्व कभी प्रकाशित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह उस अनुभव से पूर्ण है जो शाब्दिक अर्थ में अंतरतम पवित्र प्रदेश का अव्यक्त रहस्य है और इसीलिए अपमानित होने के भय से

---

[१]The most essential part of mysticism can not, of course, ever pass into expression, in as much as it consists in an experience which is in the most literal sense ineffable. The secret of the inmost sanctuary is not in danger of profanation, since none but those who penetrate into that sanctuary can understand it, and those even who penetrate find, on passing out again, that their lips are sealed by the sheer inefficiency of language as a medium for conveyiog the sense of their supreme adventure. The speech of every day has no terms for what they

रहित है। क्योंकि केवल वे ही उसे समझ सकते हैं जो उस पवित्र प्रदेश में प्रवेश कर पाते हैं, अन्य नहीं। यहाँ तक कि प्रविष्ट हुए व्यक्ति भी फिर बाहर आने पर उस भाषा की असमर्थता के कारण जिसके द्वारा वे अपने उत्कृष्ठ व्यापार को प्रकट करते, अपने ओठों को बन्द पाते हैं (कुछ बोल नहीं सकते।) जो कुछ उन्होंने देखा अथवा जाना है उसके प्रकाशित करने के लिए प्रतिदिन के व्यवहार की भाषा में कोई शब्द नहीं है और कम से कम क्या वे तर्क या न्याय की विचार-श्रृंखला के साधनों अथवा वाक्यांशों से अपने विचारों के पर्याप्त प्रदर्शन की आशा रख सकते हैं?

फिर रहस्यवादी कविता ही में क्यों अपने विचारों को अधिकतर प्रकट करते हैं, इसका कारण भी सुन लीजिए :—

[1] गद्य के अपरिष्कृत विषय को ऐसे रूप में परिवर्तित करने की निराश

---

have seen or known, and least of all can they hope for adequate expression through the phrases and apparatus of logical reasoning?

[1] In despair of moulding the stubborn stuff of prose into a form that will even approximate to their need, many of them turn, therefore, to poetry as the medium which will convey least inadequately some hints of their experience, By the rhythm of the glamour of their verse, by its peculiar quality of suggesting infinitely more than it ever says directly, by its elasticity they struggle to give what hints they may of the Reality that is eternally underlying all things and it is precisely through that rhythm and that glamour and the high enchantment of their writing that some rays gleam from the light which is supernal.

दि आक्सफ़र्ड बुक अव् मिस्टिकल वर्स—इंट्रोडक्शन।

चेष्टा में जिससे उनकी आवश्यकता की पूर्ति किसी रूप में हो सके, बहुत से (रहस्यवादी) कविता की ओर जाते हैं जो उनके अनुभव के कुछ संकेतों को हीन से हीन पर्याप्त रूप में प्रकाशित कर सकें। अपनी कविता की मुग्ध-ध्वनि से, उसकी अप्रस्तुत रूप से अपरिमित व्यंग्य शक्ति के विलक्षण गुण से, उसकी लचक से वे प्रयत्न करते हैं कि उसी अनंत सत्य के कुछ संकेतों को प्रकाशित कर दें जो सदैव सब वस्तुओं में निहित हैं। ठीक उसी ध्वनि, उसी तेज और उनकी रचनाओं के ठीक उसी उत्कृष्ट जादू से, उस प्रकाश से कुछ किरणें फूट निकलती हैं जो वास्तव में दिव्य हैं।

अब कबीर के रहस्यवाद पर दृष्टि डालिए।

कबीर का रहस्यवाद अपनी विशेषता लिए हुए है। वह एक ओर तो हिन्दुओं के अद्वैतवाद के क्रोड़ में पोषित है और दूसरी ओर मुसलमानों के सूफी-सिद्धांतों को स्पर्श करता है। इसका विशेष कारण यही है कि कबीर हिंदू और मुसलमान दोनों प्रकार के संतों के सत्संग में रहे और वे प्रारंभ से ही यह चाहते थे कि दोनों धर्म वाले आपस में दूध-पानी की तरह मिल जायँ इसी विचार के वशीभूत होकर उन्होंने दोनों मतों से संबंध रखते हुए अपने सिद्धांतों का निरूपण किया। रहस्यवाद में भी उन्होंने अद्वैतवाद और सूफी मत की 'गंगा-जमुनी' साथ ही बहा दी।

अद्वैतवाद ही मानो रहस्यवाद का प्राण है। शंकर के अद्वैतवाद में जो ईसा की ८वीं सदी में प्रादुर्भूत हुआ, आत्मा और परमात्मा की वस्तुतः एक ही सत्ता है। माया के कारण ही परमात्मा में नाम और रूप का अस्तित्व है। इस माया से छुटकारा पाना ही मानो आत्मा और परमात्मा की फिर एक बार एक ही सत्ता स्थापित करना है। आत्मा और परमात्मा एक ही शक्ति के दो भाग हैं जिन्हें माया के परदे ने अलग कर दिया है। जब उपासना या ज्ञानार्जन पर माया नष्ट हो जाती है तब दोनों भागों का पुनः एकीकरण हो जाता है। कबीर इसी बात को इस प्रकार लिखते हैं :—

अद्वैतवाद

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहिं समाना, यह तत कथौ गियानी॥

एक घड़ा जल में तैर रहा है। उस घड़े में थोड़ा पानी भी है। घड़े के भीतर जो पानी है वह घड़े के बाहर के पानी से किसी प्रकार भी भिन्न

नहीं है। किंतु वह इसलिए अलग है क्योंकि घड़े की पतली चादर उन दोनों अंशों को मिलने नहीं देती, जिस प्रकार माया ब्रह्म के दो स्वरूपों को अलग रखती है। कुंभ के फूटने पर पानी के दोनों भाग मिलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार माया के आवरण के हटने पर आत्मा और परमात्मा का संयोग हो जाता है। यही अद्वैतवाद कबीर के रहस्यवाद का आधार है।

दूसरा आधार है मुसलमानों का सूफ़ीमत। हम यह निश्चय रूप से नहीं कह सकते कि उन्होंने सूफ़ीमत के प्रतिपादन के लिए ही अपने 'शब्द' कहे हैं पर यह निश्चय है कि मुसलमानी संस्कारों के कारण उनके विचारों में सूफ़ीमत का तत्त्व मिलता है।

ईसा की आठवीं शताब्दी में इस्लाम धर्म में एक विप्लव हुआ। राजनीतिक नहीं, धार्मिक। पुराने विचारों के कट्टर मुसलमानों का एक विरोधी दल उठ खड़ा हुआ। यह फ़ारस का एक छोटा-सा संप्रदाय था। इसने परंपरागत मुस्लिम आदर्शों का ऐसा घोर विरोध किया कि कुछ समय तक इस्लाम के धार्मिक क्षेत्र में उथल-पुथल मच गई। इस संप्रदाय ने संसार के सारे सुखों को तिलांजलि-सी दे दी। संसार के सारे ऐश्वर्यों और सुखों को स्वप्न की भाँति भुला दिया। वाह्य शृंगार और बनावटी बातों से उसे एक बार ही घृणा हो गई। उसने एक स्वतंत्र मत की स्थापना की। सादगी और सरलता ही उसके वाह्य जीवन की अभिरुचि बन गई। क़ीमती कपड़े और स्वादिष्ट भोजन से उसे घृणा हो गई। सरलता और सादगी का आदर्श अपने सम्मुख रख कर उस संप्रदाय ने अपने शरीर के वस्त्र बहुत ही साधारण रक्खे। वे सफेद ऊन के साधारण वस्त्र। फ़ारसी में सफ़ेद ऊन को 'सूफ़' कहते हैं। इसी शब्दार्थ के अनुसार सफ़ेद ऊन के वस्त्र पहिनने वाले व्यक्ति 'सूफ़ी' कहलाने लगे। उनके परिधान के कारण ही उनके नाम की सृष्टि हुई।

सूफ़ीमत

सूफ़ीमत में भी यद्यपि बंदे और ख़ुदा का एकीकरण हो सकता है पर उसमें माया का कोई विशेष स्थान नहीं है। जिस प्रकार एक पथिक अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने के लिए प्रस्थान करता है, मार्ग में उसे कुछ स्थल पार करने पड़ते हैं, उसी प्रकार सूफ़ीमत में आत्मा परमात्मा से मिलने के लिए व्यग्र होकर अग्रसर होती है। परमात्मा से मिलने के पहले आत्मा को चार दशाएँ पार करनी पड़ती हैं:—

१. शरियत (شریعت)
२. तरीक़त (طریقت)
३. हक़ीक़त (حقیقت)
४. मारिफ़त (معرفت)

इस मारिफ़त में जाकर आत्मा और परमात्मा का सम्मिलन होता है। वहाँ आत्मा स्वयं 'फ़ना' (فنا) होकर 'बक़ा' (بقا) के लिए प्रस्तुत होती है। इस प्रकार आत्मा में परमात्मा का अनुभव होने लगता है और 'अनलहक़' (انالحق) सार्थक हो जाता है। अपने अनुराग में चूर होकर आत्मा यह आध्यात्मिक यात्रा पार कर ईश्वर से मिलती है और तब दोनों शराब-पानी की तरह मिल जाते हैं।

दूसरी बात यह है कि सूफ़ीमत में प्रेम का अंश बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रेम ही कर्म है, और प्रेम ही धर्म है। सूफ़ीमत मानों स्थान-स्थान पर प्रेम के आवरण से ढका हुआ है। उस सूफ़ीमत के बाग़ को प्रेम के फ़ुहारे सदा सींचते रहते हैं। निस्वार्थ प्रेम ही सूफ़ीमत का प्राण है। फ़ारसी के जितने सूफ़ी कवि हैं वे कविता में प्रेम के अतिरिक्त कुछ जानते ही नहीं हैं। प्रमाण-स्वरूप जलालुद्दीन रूमी और जामी के बहुत से उदाहरण दिए जा सकते हैं।

प्रेम के साथ इस सूफ़ीमत में प्रेम का नशा भी प्रधान है। उसमें नशे के ख़ुमार का और भी महत्त्वपूर्ण अंश है। उसी नशे के ख़ुमार की बदौलत ईश्वर की अनुभूति का अवसर मिलता है। फिर संसार की कोई स्मृति नहीं रहती, शरीर का कुछ ध्यान नहीं रहता। केवल परमात्मा की "लौ" ही सब कुछ होती है। कबीर ने भी एक स्थान पर लिखा है :—

हरि रस पीया जानिये, कबहुँ न जाय खुमार।
मैं मंता घूमत फिरै, नाहीं तन की सार॥

एक बात और है। सूफ़ीमत में ईश्वर की भावना स्त्री-रूप में मानी गई है। वहाँ भक्त पुरुष बन कर ईश्वर रूपी स्त्री की प्रसन्नता के लिए सौ जान से निसार होता है, उसके हाथ की शराब पीने को तरसता है, उसके द्वार पर जाकर प्रेम की भीख माँगता है। ईश्वर एक दैवी स्त्री के रूप में उसके सामने उपस्थित होता है। उदाहरणार्थ रूमी की एक कविता का भावार्थ यह है:—

प्रियतमा के प्रति प्रेमी की पुकार

मेरे विचारों के संघर्ष से मेरी कमर टूट गई है।

ओ प्रियतमे, आओ और करुणा से मेरे सिर का स्पर्श करो।
मेरे सिर से तुम्हारी हथेली का स्पर्श मुझे शांति देता है।
तुम्हारा हाथ ही तुम्हारी उदारता का सूचक है।
मेरे सिर से अपनी छाया को दूर मत करो।
मैं संतप्त हूँ, संतप्त हूँ, संतप्त हूँ।
.... ।
ऐ, मेरा जीवन ले लो,

तुम जीवन-स्रोत हो क्योंकि तुम्हारे विरह में मैं अपने जीवन से क्लांत हूँ। मैं वह प्रेमी हूँ जो प्रेम के पागलपन में निपुण है।

मैं विवेक और बुद्धि से हैरान हूँ।

अंत में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि अद्वैतवाद में आत्मा और परमात्मा के एकीकरण होने न होने में चिंतन और माया का बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग है और सूफ़ीमत में उसी के लिए हृदय की चार अवस्थाओं और प्रेम का। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि कबीर का रहस्यवाद हिन्दुओं के अद्वैतवाद और मुसलमानों के सूफ़ीमत पर आश्रित है। इसलिए कबीर ने अपने रहस्यवाद के स्पष्टीकरण में दोनों की—अद्वैतवाद और सूफ़ीमत की—बातें ली हैं। फलतः उन्होंने अद्वैतवाद से माया और चिंतन तथा सूफ़ीमत से प्रेम लेकर अपने रहस्यवाद की सृष्टि की है। सूफ़ीमत के स्त्री-रूप भगवान की भावना ने अद्वैतवाद के पुरुष-रूप भगवान के सामने सिर झुका लिया है। इस प्रकार कबीर ने दोनों सिद्धांतों से अपने काम के उपयुक्त तत्त्व लेकर शेष बातों पर ध्यान ही नहीं दिया है।

इस विषय में कबीर की कविता का उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत होता है।

परमात्मा की अनुभूति के लिए आत्मा प्रेम से परिपूर्ण होकर अग्रसर होती है। वह सांसारिकता का बहिष्कार कर दिव्य और अलौकिक वातावरण में उठती है। वह उस ईश्वर के समीप पहुँच जाती है जो इस विश्व का निर्माणकर्ता है। उस ईश्वर का नाम है सत्पुरुष। सत्पुरुष के संसर्ग से वह आत्मा उस दैवी शक्ति के कारण हतबुद्धि-सी हो जाती है। वह समझ ही नहीं सकती कि परमात्मा क्या है, कैसा है! वह अवाक् रह जाती है। वह ईश्वरीय शक्ति अनुभव करती है पर उसे प्रकट नहीं कर सकती। इसीलिए 'गूँगे के

'गुड़' के समान वह स्वयं तो परमात्मानुभव करती है पर प्रकट में कुछ भी नहीं कह सकती। कुछ समय के बाद जब उसमें कुछ बुद्धि आती है और कुछ कुछ ज़बान खुलती है तो वह एकदम से पुकार उठती है :—

कहहि कबीर पुकारि के, अद्भुत कहिए ताहि।

उस समय आत्मा में इतनी शक्ति ही नहीं होती कि वह परमात्मा की ज्योति का निरूपण करने में समर्थ हो। वह आश्चर्य और जिज्ञासा की दृष्टि से परमात्मा की ओर देखती रहती है। अंत में बड़ी कठिनता से कहती है :—

वर्णहुँ कौन रूप औ रेखा,
दोसर कौन आहि जो देखा।
ओंकार आदि नहिं वेदा,
ताकर कहहु कौन कुल भेदा॥

+ + +

नहिं जल नहिं थल, नहिं थिर पवना
को धरै नाम हुकुम को बरना
नहिं कछु होति दिवस औ राती।
ताकर कहूँ कौन कुल जाती॥
शून्य सहज मन स्मृति ते, प्रगट भई एक जोति।
ता पुरुष की बलिहारी, निरालंब जे होति॥

रमैनी ६

यहाँ आत्मा सत्पुरुष का रूप देख देख कर मुग्ध हो जाती है। धीरे धीरे आत्मा परमात्मा की ज्योति में लीन होकर विश्व की विशालता का अनुभव करती है और उस समय वह आनंदातिरेक से परमात्मा के गुण वर्णन करने लगती है :—

जाहि कारण शिव अजहूँ वियोगी।
अंग विभूति लाइ भे जोगी॥
शेष सहस मुख पार न पावैं।
सो अब खसम सहित समुझावैं॥

इतना सब कहने पर भी अंत में यही शेष रह जाता है कि—

तहिया गुप्त स्थूल नहिं काया।
ताके शोक न ताके माया॥

कमल पत्र तरंग इक माहीं।
संग ही रहै लिप्त पै नाहीं॥
आस ओस अंडन में रहई।
अगनित अंड न कोई कहई॥
निराधार आधार लै जानी।
राम नाम लै उचरै बानी॥

× ×

भर्मक बाँधल ई जगत, कोइ न करै बिचार।
हरि की भक्ति जाने बिना, भव बूड़ि मुआ संसार॥

रमैनी ७४

इसी प्रकार संसार के लोगों को उपदेश देती हुई आत्मा कहती है:—

जिन यह चित्र बनाइयाँ, साँचो सो सूरति हार।
कहहि कबीर ते जन भले, जे चित्रवंतहिं लेहिं बिचार॥

इस प्रेम की स्थिति बढ़ते बढ़ते यहाँ तक पहुँचती है कि आत्मा स्वयं परमात्मा की स्त्री बन कर उसका एक भाग बन जाती है। यही इस प्रेम की उत्कृष्ट स्थिति है।

एक अंड ॐकार ते, सब जग भया पसार।
कहहिं कबीर सब नारी राम की, अविचल पुरुष भतार॥

रमैनी २७

और अंत में आत्मा कहती है:—

हरि मोर पीव माई, हरि मोर पीव।
हरि बिन रहि न सकै मोर जीव॥
हरि मोरा पीव मैं राम की बहुरिया।
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया॥

शब्द ११७

और

जो पै पिय के मन नहिं भाये।
तो का परोसिन के दुलराये॥
का चूरा पाइल झमकाएँ।
कहा भयो बिछुआ ठमकाएँ॥

का काजल सेंदुर कै दीये।
सोलह सिंगार कहा भयो कीये॥
अंजन मंजन करै ठगौरी।
का पचि मरै निगोढ़ी बौरी॥
जो पै पतिव्रता है नारी।
कैसे ही रहौ सो पियहिं पियारी॥
तन मन जोबन सौंपि सरीरा।
ताहि सुहागिन कहै कबीरा॥

इस रहस्यवाद की चरम सीमा उस समय पहुँच जाती है जब आत्मा पूर्ण रूप से परमात्मा में संबद्ध हो जाती है, दोनों में कोई अंतर नहीं रह जाता। यहाँ आत्मा अपनी आकांक्षा पूर्ण कर लेती है और फिर आत्मा और परमात्मा की सत्ता एक हो जाती है। कबीर उस स्थिति का अनुभव करते हुए कहते हैं :—

हरि मरि हैं तो हम हूँ मरि हैं।
हरि न मरै हम काहे को मरि हैं॥

आत्मा और परमात्मा में इस प्रकार मिलन हो जाता है कि एक के विनाश से दूसरे का विनाश और एक के अस्तित्व से दूसरे का अस्तित्व सार्थक होता है। फ़ारसी में इसी विचार का एक बड़ा सुन्दर अवतरण है। निकल्सन ने उसका अँग्रेजी में अनुवाद कर दिया है, उसका तात्पर्य यही है :—

[1]जब वह (मेरा जीवन तत्व) 'दूसरा' नहीं कहलाता तो मेरे गुण

---

[1]When in (essence) is not called two my attributes are hers, and since we are one her outward aspect is mine.

If she be called, 'tis I who answer, and I am summoned she answers him who calls me and cries labbayak (At thy Service.)

And if she speak, 'tis I who converse. Like wise if I tell a story, 'tis she that tells it.

उसके (प्रियतमा) के गुण हैं और जब हम दोनों एक हैं तो उसका बाह्य रूप मेरा है। यदि वह बुलाई जाय तो मैं उत्तर देता हूँ और यदि मैं बुलाया जाता हूँ तो वह मेरे बुलाने वाले को उत्तर देती है और कह उठती है "लब्बयक" (जो आज्ञा)। वह बोलती है मानों मैं ही वार्तालाप कर रहा हूँ, उसी प्रकार यदि मैं कोई कथा कहता हूँ तो मानों वही उसे कहती है। हम लोगों के बीच में से मध्यम पुरुष सर्वनाम ही उठ गया है। और उसके न रहने से मैं विभिन्न करने वाले समाज से ऊपर उठ गया हूँ।

इस चरम सीमा को पाना ही कबीर के उपदेश का तत्त्व था। उनकी उल्टवाँसियों में इसी आत्मा और परमात्मा का रहस्य भरा हुआ है।

इस प्रकार रहस्यवाद की पूरी अभिव्यक्ति हम कबीर की कविता में पाते हैं।

अब हमें कबीर के रूपकों पर विचार करना है।

जो रहस्यवादी अपने भावों को थोड़ा बहुत प्रकट कर सके हैं उनके विषय में एक बात और विचारणीय है। वह यह कि ये रहस्यवादी स्वभावतः अपने विचारों को किसी रूपक में प्रकट करते हैं। वे स्पष्ट रूप से अपने भाव कहने में असमर्थ हो जाते हैं क्योंकि अनुभूत भाव-सौंदर्य इतना अधिक होता है कि वे साधारण शब्दों में उसे व्यक्त नहीं कर सकते। उनका भावोन्माद इतना अधिक होता है कि बोलचाल के साधारण शब्द उनका बोझ नहीं सम्हाल सकते। इसीलिए उन्हें अपने भावों को प्रकट करने के लिए रूपकों की शरण लेनी पड़ती है। अँग्रेज़ी में भी जो रहस्यवादी कवि हो गए हैं उन्होंने भी इस रूपक भाषा[1] को अपनाया है। यह रूपक उन रहस्यवादियों के हृदय में इस प्रकार बिना श्रम के चला जाता है जिस प्रकार किसी ढालू ज़मीन पर जल की धारा। फल यह होता है कि रहस्यवादी स्वयं भूल जाता

The pronoun of second person has gone out of use between us, and by its removal I am raised above the sect who separate.

दि आइडिया अव् पर्सोनेलिटी इन सूफ़ीज़्म

पृष्ठ २०

[1] The Language of Symbols.

है कि जो कुछ वह भावोन्माद में, आनंदोद्रेक में कह गया वह लोगों को किस प्रकार समझावे, इसीलिए समालोचकगण चक्कर में पड़ जाते हैं कि अमुक रूपक के क्या अर्थ हैं ? उस पद का क्या अर्थ हो सकता है। यदि समालोचक वास्तव में कवि के हृदय की दशा जान जावें तो न तो वे कवि को पागल कहेंगे और न प्रलापी।

कबीर का रहस्यवाद बहुत गहरा है। उन्होंने संसार के परे अनंत शक्ति का परिचय पाकर उससे अपने को संबद्ध कर लिया है। उसी को उन्होंने अनेक रूपकों में प्रदर्शित किया है। एक रूपक लीजिए :—

हरि मोर रहटा, मैं रतन पिउरिया।
हरि का नाम ले कतति बहुरिया॥
छौ मास तागा बरस दिन कुकरी।
लोग कहैं भल कातल बपुरी॥
कहहि कबीर सूत भल काता।
चरखा न होय मुक्ति कर दाता॥

देखने से अर्थ सरल ज्ञात होगा, पर वास्तव में वह कितनी गहरी भावनाओं से ओत-प्रोत है यह विचारणीय है। रूपक भी चरखे से लिया गया है, इसलिए कि कबीर जुलाहे थे, ताना-बाना और चरखा उनकी आँखों के सामने सदैव झूलता होगा। उनकी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति पर किसी को आश्चर्य न होगा। अब यदि चरखे का रूपक उस पद से हटा लिया जाय तो विचार की सारी शक्ति ढीली पड़ जायगी और भावों का सौंदर्य बिखर जायगा। उसका यह कारण है कि रूपक बिलकुल स्वाभाविक है। कबीर को चलते-फिरते यह रूपक सूझ गया होगा। स्वाभाविकता ही सौंदर्य है। अतएव इस स्वाभाविक रूपक को हटाना सौंदर्य का नाश करना है। यहाँ यह स्पष्ट है कि आत्मा और परमात्मा का संबंध चित्रित करने में रूपक का सहारा कितना महत्व रखता है। रहस्यवादियों ने तो यहाँ तक किया है कि यदि उन्हें अपने भावों के उपयुक्त शब्द नहीं मिले तो उन्होंने नये गढ़ डाले हैं। मकड़ी के जाले के समान उनकी कविता विस्तृत है, उससे नये शब्द और भाव उसी प्रकार निर्मित किए गए हैं जिस प्रकार एक मकड़ी अपनी इच्छानुसार धागे बनाती और मिटाती है। कबीर के उसी रूपक का परिवर्धित उदाहरण लीजिए—

जौ चरखा जरि जाय, बढ़ैया ना मरै ।
मैं कातौं सूत हजार, चरखुला जिन जरै ॥
बाबा, मोर ब्याह कराव, अच्छा बरहि तकाय ।
जो लौं अच्छा बर न मिलै, तौ लौं तुमहि बिहाय ।
प्रथम नगर पहूँचते, परिगो सोग सँताप ।
एक अचंभा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप ।
समधी के घर समधी आये, आये बहू के भाय ।
गोडे चूल्हा दै दै चरखा दियो दिढ़ाय ।
देवलोक मर जायँगे, एक न मरै बढ़ाय ।
यह मन रञ्जन कारणै चरखा दियो दिढ़ाय ।
कहहि कबीर सुनो हो संतो चरखा लखै जो कोय ।
जो यह चरखा लखि परै ताको आवागमन न होय ।

बीजक शब्द ६८

इसका साधारण अर्थ यही है :—

यदि चरखा जल भी जाय तो उसका बनाने वाला बढ़ई नहीं मर सकता, पर यदि मेरा चरखा न जलेगा तो मै उससे हज़ार सूत कातूँगी। बाबा, अच्छा वर खोज कर मेरा विवाह करा दीजिए, और जब तक अच्छा वर न मिले तब तक आप ही मुझसे विवाह कर लीजिए। नगर में प्रथम बार पहुँचते ही शोक और दुःख सिर पर आ पड़े। एक आश्चर्य हमने देखा है कि पिता के साथ पुत्री ने अपना विवाह कर लिया। फलतः एक समधी के घर दूसरे समधी आये और बहू के यहाँ भाई। चूल्हा में गोड़ा दे कर (चरखे के विविध भागों को सटा कर) चरखा और भी मज़बूत कर दिया। स्वर्ग में रहने वाले सभी देव मर जायँगे पर वह बढ़ई नहीं मर सकता जिसने मन को प्रसन्न रखने के लिए चरखे को और सुदृढ़ कर दिया है। कबीर कहते हैं, ओ संतो सुनो, कोई इस चरखे का वास्तविक रूप देखता है, जिसने इस चरखे को एक बार देख लिया उसका इस संसार में फिर आवागमन नहीं होता, वह संसार के बंधनों से सदैव के लिए छूट जाता है।

सरसरी दृष्टि से देखने पर तो यह ज्ञात होता है कि इस सारे अवतरण में भाव-साम्य ही नहीं है। एक विचार है, वह समाप्त होने ही नहीं पाया और दूसरा विचार आ गया। विचार की गति अनेक स्थलों पर टूट गई है। भावों

का विकास अव्यवस्थित रूप से हुआ है, पर यदि रूपक के वातावरण से निकल कर—रूपक को एक-मात्र भावों के प्रकाशन का सहारा मान कर हम उस अवतरण के अंतरंग अर्थ को देखें तो भाव-सौंदर्य हमें उसी समय ज्ञात हो जायगा। विचारों की सजावट आँखों के सामने आ जायगी और हमें कवि का संदेश पढ़ते ही मिल जायगा।

रूपकों के अव्यवस्थित होने का कारण यह हो सकता है कि जिस समय कवि एकाग्र होकर दिव्य शक्ति का सौंदर्य देखता है, संसार से बहुत ऊपर उठ कर देवलोक में विहार करता है, उसी समय वह उस आनंद और भाव उन्माद को नहीं सम्हाल सकता। उस मस्ती से दीवाना होकर वह भिन्न-भिन्न रीतियों से अपने भावों का प्रदर्शन करता है। शब्द यदि उसे मिलते भी हैं तो उसके विह्वल आह्लाद से वे बिखर जाते हैं और कवि का शब्द-समूह बूढ़े मनुष्य के निर्बल अंगों के समान शिथिल पड़ जाता है। यही कारण है कि भाषा की बागडोर उसके हाथ से निकल जाता है और वह असहाय होकर बिखरे हुए शब्दों में, अनियंत्रित वाग्धाराओं में, टूटे-फूटे पदों में अपने उन्मत्त भावों का प्रकाशन करता है। यही कारण है कि उसके रूपक कभी उन्मत्त होते हैं, कभी शिथिल और कभी टूटे-फूटे। अब रूपक का आवरण हटा कर ज़रा इस पद का सौंदर्य देखिए:—

यदि काल-चक्र (चरखा) नष्ट भी हो जाय तो उसका निर्माणकर्त्ता अनंत शक्ति संपन्न ईश्वर कभी नष्ट नहीं हो सकता। यदि यह काल-चक्र न जले, न नष्ट हो, तो मैं सहस्रों कर्म कर सकता हूँ। हे गुरु, आप ईश्वर का परिचय पाकर उनसे मेरा संबंध करा दीजिए और जब तक ईश्वर न मिले तब तक आप ही मुझे अपने संरक्षण में रखिए। (जौं लौं अच्छा वर न मिलै तौ लौं तुमहिं बिहाय।) आप से प्रथम बार ही दीक्षित होने पर मुझे इस बात की चिंता होने लगी कि मैं किस प्रकार आपकी आज्ञा पालन करने में समर्थ हो सकूँगा। पर मुझे आश्चर्य हुआ कि आपके प्रभाव से मेरी आत्मा अपने उत्पन्न करने वाले परम पिता ब्रह्म में जाकर संबद्ध हो गई। फल यह हुआ कि मेरे हृदय में ईश्वर की व्यापकता और भी बढ़ गई। समधी से समधी की भेंट हुई, आत्मा के पिता ब्रह्म से गुरु के पिता ब्रह्म की भेंट हुई, अर्थात् ईश्वर की अनुभूति दुगुनी हो गई। वाणी रूपी बहू के पास पांडित्य-रूपी भाई आया अर्थात् वाणी में विद्वत्ता और पांडित्य आ गया। उस समय कर्मकांडों

से सज्जित काल-चक्र की दृढ़ता और भी स्पष्ट जान पड़ने लगी। सारे विश्व को एक नज़र से देख लेने पर इतना अनुभव हो गया कि विश्व की सभी वस्तुएँ मर्त्य हो सकती हैं पर वह अनंत शक्ति जिसने काल-चक्र का निर्माण किया है कभी नष्ट नहीं हो सकती। उसने हृदय को सुचारु रूप से रखने के लिए इस काल-चक्र को और भी सुदृढ़ कर दिया है। कबीर कहते हैं कि जिसने एक बार इस काल-चक्र के मर्म को समझ लिया वह कभी संसार के बंधनों से बद्ध नहीं हो सकता। उसे ईश्वर की ऐसी अनुभूति हो जाती है कि उसके जन्म-मृत्यु का बंधन नष्ट हो जाता है।

रूपक का बंधान कितना सुन्दर है! अब हमें यह स्पष्ट ज्ञात हो गया कि रूपक का सहारा लेकर रहस्यवादी किस प्रकार अपने भावों को प्रकट करते हैं। एक तो वे अपनी अनुभूति प्रकट ही नहीं कर सकते और जो कुछ वे कर सकते हैं ऐसे ही रूपकों के सहारे। डाक्टर फ्रूड का तो मत ही यही है कि आत्मा की भाषा रूपकों में ही प्रकट होती है।

और वे रूपक भी कैसे होते हैं! उनके सामने संसार की वस्तुएँ गुब्बारे की भाँति हैं जिनमें अनंत शक्ति की गैस भरी हुई है। यही गुब्बारे कवि की कल्पना के झोंके से यहाँ वहाँ उड़ते फिरते हैं। कवि की कल्पना भी इस समय एक घड़ी के पेंडुलम का रूप धारण करती है। वह पृथ्वी और आकाश इन दो क्षेत्रों में बारी-बारी से घूमा करती है। आज ईश्वर की अनंत विभूति है तो कल संसार की वस्तुओं में उस अनुभूति का प्रदर्शन है। सोमवार को कवि ने ईश्वर की अनंत शक्तियों में अपने को मिला दिया था तो मंगलवार को वही कवि संसार में आकर उस दिव्य अनुभूति को लोगों के सामने बिखरा देता है।

कबीर के रूपकों के व्यवहार में एक बात और है। वह यह कि कबीर के रूपक स्वाभाविक होने पर भी जटिल हैं। यद्यपि उनके रूपक पुष्प की भाँति उत्पन्न होते हैं और उन्हीं की भाँति विकसित भी, पर उनमें दुरूहता के काँटे अवश्य होते हैं। शायद कबीर जटिल होना भी चाहते थे। यद्यपि वे लोगों के सामने अपने विचार प्रकट करना चाहते थे तथापि वे यह भी चाहते थे कि लोग उनके पदों को समझने की कोशिश करें। सोना खान के भीतर ही मिलता है, ऊपर नहीं। यदि सोना ऊपर ही बिखरा हुआ मिल जाय तो फिर उसका महत्त्व ही क्या रहा! उसी प्रकार कबीर के दिव्य वचन रूपकों

के अंदर छिपे रहते हैं। जो जिज्ञासु होंगे वे स्वयं ही परिश्रम कर समझ लेंगे अन्यथा मूर्खों के लिए ऐसे वचनों का उपयोग ही क्या हो सकता है! एक बार अंग्रेज़ी के रहस्यवादी कवि ब्लेक से भी एक महाशय ने प्रश्न किया कि उनके विचारों का स्पष्टीकरण करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति की आवश्यकता है। इस पर उन्होंने कहा, "जो वस्तु वास्तव में उत्कृष्ट है वह निर्बल व्यक्ति के लिए सदैव अगम्य होगी और जो वस्तु किसी मूर्ख को भी स्पष्ट की जा सकती है वह वास्तव में किसी काम की नहीं। प्राचीन समय के विद्वानों ने उसी ज्ञान को उपदेशयुक्त समझा था जो बिलकुल स्पष्ट नहीं था, क्योंकि ऐसा ज्ञान कार्य करने की शक्ति को उत्तेजित करता है। ऐसे विद्वानों में मैं मूसा, सालोमन, ईसप, होमर और प्लेटो का नाम ले सकता हूँ।"

इसी विचार के वशीभूत होकर कबीर ने शायद कहा था :—

कहै कबीर सुनो हो संतो, यह पद करो निबेरा।

अब हम रहस्यवाद की कुछ विशेषताओं पर प्रकाश डालना चाहते हैं। ये विशेषताएँ रहस्यवाद के विषय में अत्यधिक विवेचना कर यह बतला सकती हैं कि अमुक रहस्यवादी अपनी कल्पना के ज्ञान में कहाँ तक ऊँचा उठ सका है। इन्हीं विशेषताओं का स्पष्टीकरण हम इस प्रकार करेंगे।

रहस्यवादी की विशेषताएँ

रहस्यवाद की पहली विशेषता यह है कि उसमें प्रेम की धारा अबोध रूप से बहना चाहिए। रहस्यवादी अपनी अनुभूति में वह तत्व पा जावे जिससे उसके सांसारिक अलौकिक जीवन का सामंजस्य हो। प्रेम का मतलब हृदय की साधारण-सी भावुक स्थिति न समझी जाय वरन् वह अंतरंग और सूक्ष्म प्रवृत्ति हो जिससे अंतर्जगत अपने सभी अंगों का मेल वहिर्जगत से कर सके। प्रेम हृदय की वह घनीभूत भावना हो जिससे जीवन का विकास सदैव उन्नति की ओर हो, चाहे वह प्रेम एक बुद्धिमान् के हृदय में निवास करे अथवा एक मूर्ख के हृदय में। किंतु दोनों स्थानों में स्थित उस प्रेम की शक्ति में कोई अंतर न हो। प्रेम का संबंध ज्ञान से नहीं है। वह हृदय की वस्तु है, मस्तिष्क की नहीं। अतएव एक साधारण से साधारण आदमी उत्कृष्ट प्रेम कर सकता है और एक विद्वान प्रेम की परिभाषा से भी अनभिज्ञ रह सकता है। इसीलिए प्रेम का स्थान ज्ञान से बहुत ऊँचा है। रहस्यवाद में उतनी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है जितनी प्रेम की। अतः कहा गया है कि ईश्वर

ज्ञान से नहीं जाना जा सकता, प्रेम से वश में किया जा सकता है। जब तक रहस्यवादी के हृदय में प्रेम नहीं है तब तक वह अनंत शक्ति की ओर एकाग्र भी नहीं हो सकता। वह उड़ते हुए बादल की भाँति कभी यहाँ भटकेगा, कभी वहाँ। उसमें स्थिरता नहीं आ सकती। इसलिए ऐसे प्रेम की उत्पत्ति होनी चाहिए जिसमें बंधन नहीं, बाधा नहीं, जो कलुषित और बनावटी नहीं। उस प्रेम के आगे फिर किसी ज्ञान की आवश्यकता नहीं है :—

गुरु प्रेम का अंक पढ़ाय दिया,
अब पढ़ने को कछु नहिं बाकी।

—कबीर

इस प्रेम के सहारे रहस्यवादी ईश्वर की अभिव्यक्ति पाते हैं। जब ऐसा प्रेम होता है तभी रहस्यवादी मतवाला हो जाता है। कबीर कहते हैं :—

आठहूँ पहर मतवाल लागी रहै,
आठहूँ पहर की छाक पीवै,
आठहूँ पहर मस्तान माता रहै,
ब्रह्म की छौल में साध जीवै,
सांच ही कहतु और सांच ही गहतु है,
कांच को त्याग करि सांच लागा,
कहै कब्बीर यों साध निर्भय हुआ,
जनम और मरन का भर्म भागा।

और उस समय उस प्रेम में कौन कौन से दृश्य दिखलाई पड़ते हैं?

गगन की गुफा तहाँ गैब का चांदना
उदय और अस्त का नाव नाहीं।
दिवस और रैन तहाँ नेक नहिं पाइए,
प्रेम औ परकास के सिंध माहीं॥
सदा आनंद दुख दंदु व्यापै नहीं,
पुरनानंद भर पूर देखा।
भर्म और भ्रांति तहाँ नेक आवै नहीं,
कहै कब्बीर रस एक पेखा॥

प्रेम के इस महत्त्व की उपेक्षा कौन कर सकता है! इसीलिए तो रहस्यवाद के इस प्रेम को अबुल अल्लाह ने इस प्रकार कहा है :—

[1]चर्च, मन्दिर या काबा का पत्थर; कुरान, बाइबिल या शहीद की अस्थियाँ; ये सब और इनसे भी अधिक (वस्तुएँ) मेरे हृदय को सह्य हैं क्योंकि मेरा धर्म केवल प्रेम है।

प्रोफ़ेसर इनायतख़ाँ रचित 'सूफी मैसेज' पुस्तक का एक अवतरण लेकर हम इसे और भी स्पष्ट करना चाहते हैं :—

[2]सूफी अपने सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य की पूर्ति के लिए प्रेम और भक्ति का ही मार्ग ग्रहण करते हैं क्योंकि वह प्रेम-भावना ही है जो मनुष्य को एक जगत से भिन्न जगत में लाई है और यही वह शक्ति है जो फिर उसे भिन्न जगत से एक जगत में ले जा सकती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम का किसी स्वार्थ से रहित होना अधिक आवश्यक है, अन्यथा प्रेम का महत्त्व कम हो जाता है। अतएव रहस्यवादी में निस्वार्थ प्रेम का होना अत्यंत आवश्यक है।

रहस्यवाद की दूसरी विशेषता यह है कि उसमें आध्यात्मिक तत्त्व हो। संसार की नीरस वस्तुओं से बहुत दूर एक ऐसे वातावरण में रहस्यवाद रूप ग्रहण करता है, जिसमें सदैव नई नई उमंगों की सृष्टि होती है। उस दिव्य वातावरण में कोई भी वस्तु पुरानी नहीं दीखती। रहस्यवादी के शरीर में प्रत्येक समय ऐसी स्फूर्ति रहती है जिससे वह अनंत शक्ति की अनुभूति में मग्न रहता है और सांसारिकता से बहुत दूर किसी ऐसे स्थान में निवास करता है जहाँ न तो मृत्यु का भय है, न रोगों का अस्तित्व है और न शोक का ही

---

[1]A church, a temple, or a Kaba stone,
Kuran or Bible or Martyr's bone
All these and more my heart can tolerate
Since my religion is love alone.

[2]Sufis take the course of love and devotion to accomplish their highest aim because it is love which has brought man from the world of Unity to the world of Variety and the same force again can take him to the world of Unity from that of variety. Sufi Message.

प्रसार है। उस दिव्य मिठास में सभी वस्तुएँ एकरस मालूम पड़ती हैं और कवि अपने में उस स्फूर्ति का अनुभव करता है जिससे ईश्वरी संबंध की अभिव्यक्ति होती रहती है। उस आध्यात्मिक दशा में रहस्वादी अपने को ईश्वर से मिला देता है और उस अलौकिक आनंद में मस्त हो जाता है जिसमें संसार के सूखेपन का पता ही नहीं लगता। उस आध्यात्मिक तत्त्व में अनंत से मिलाप की प्रधानता रहती है। आत्मा और परमात्मा दोनों की अभिन्नता स्पष्ट प्रकट होती है। प्रसिद्ध फ़ारसी कवि जामी ने उसी आध्यात्मिक तत्त्व में अपना काव्य-कौशल दिखलाया है।

अला-हल्लाज मंसूर की भावना भी इसी प्रकार है :—

[1]तेरी आत्मा मेरी आत्मा से मिल गई है जैसे स्वच्छ जल से शराब। जब कोई वस्तु तुझे स्पर्श करती है तो मानों वह मुझे स्पर्श करती है। देख न, सभी प्रकार से तू 'मैं' है।

कबीर ने निम्नलिखित पद में इसी आध्यात्मिक तत्त्व का कितना सुन्दर विवेचन किया है :—

योगिया की नगरी बसै मति कोई
जो रे बसै सो योगिया होई;
वही योगिया के उलटा ज्ञाना
कारा चोला नाहीं माना;
प्रकट सो कंथा गुप्ता धारी
तामें मूल संजीवनी भारी;
वा योगिया की युक्ति जो बूझै
राम रमै सो त्रिभुवन सूझै;
अमृत बेली छन छन पीवे
कहै कबीर सो युग युग जीवै।

---

[1]The Spirit is mingled in my spirit even as wine is mingled with pure water. When any thing touches Thee, it touches me. Lo, in every case Thou art I.

दि आइडिया अव् पर्सोनेलिटी इन सूफ़ीज़्म, पृष्ठ ३०

रहस्यवाद की तीसरी विशेषता यह है कि वह सदैव जाग्रत रहे, कभी सुप्त न हो। उसमें सदैव ऐसी शक्ति रहे जिससे रहस्यवादी को दिव्य और अलौकिक झाँकी दीखती रहे। यदि रहस्यवाद की शक्ति अपूर्ण रही तो रहस्यवादी अपने ऊँचे आसन से गिर कर यहाँ वहाँ भटकने लगता है और ईश्वर की अनुभूति को स्वप्न के समान समझने लगता है। रहस्यवाद तो ऐसा हो कि एक बार ही रहस्यवादी यह शक्ति प्राप्त कर ले कि वह निरंतर ईश्वर में लीन हो जाय। जब उसमें एक बार वह क्षमता आ गई कि वह ईश्वरीय विभूतियों को स्पर्श कर अपने में संबद्ध कर ले तब यह क्यों होना चाहिए कि कभी कभी वह उन शक्तियों से हीन रहे? सूफ़ी लोग सोचते हैं कि रहस्यवादी की यह दिव्य परिस्थिति सदैव नहीं रहती। उसे ईश्वर की अनुभूति तभी होती है जब उसे 'हाल' आते हैं। जीवन के अन्य समय में वह साधारण मनुष्य रहता है। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। जब रहस्यवादी एक बार दिव्य संसार में प्रवेश कर पाता है, जब वह अपने प्रेम के कारण अनंत शक्ति से मिलाप कर लेता है, उसकी सारी बातें जान जाता है तब फिर यह कैसे संभव हो सकता है कि वह कभी कभी उस दिव्य लोक से निकाल दिया जाय, अथवा दिव्य सौंदर्य का अवलोकन रोकने के लिए उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी जाय। रहस्यवादी को जहाँ एक बार दिव्य लोक में स्थान प्राप्त हुआ कि वह सदैव के लिए अपने को ईश्वर में मिला लेता है और कभी उससे अलग होने की कल्पना तक नहीं करता।

रहस्यवाद की चौथी विशेषता यह है कि अनंत की ओर केवल भावना ही की प्रगति न हो वरन् संपूर्ण हृदय की आकांक्षा उस ओर आकृष्ट हो जाय। यदि केवल भावना ही ऊपर उठी और हृदय अन्य बातों में संलग्न रहा तो रहस्यवाद की कोई विशेषता ही नहीं रही। अंडरहिल रचित मिस्टिसिज़्म में इसी विषय पर एक बड़ा सुन्दर अवतरण है।

मेगडेबर्ग की मेक्थिल्ड को एक दर्शन हुआ। उसका वर्णन इस प्रकार है :—

आत्मा ने अपनी भावना से कहा :—

"शीघ्र ही जाओ, और देखो कि मेरे प्रियतम कहाँ हैं! उनसे जाकर कहो कि मैं तुम्हें प्यार करती हूँ।"

भावना चली, क्योंकि वह स्वभावतः ही शीघ्रगामिनी है और स्वर्ग में

पहुँच कर बोली :—

"प्रभो, द्वार खोलिए और मुझे भीतर आने दीजिए।" उस स्वर्ग के स्वामी ने कहा, "इस उत्सुकता का क्या तात्पर्य है?" भावना ने उत्तर दिया, "भगवन् मैं आपसे यह कहना चाहती हूँ कि मेरी स्वामिनी अब अधिक देर तक जीवित नहीं रह सकती। यदि आप इसी समय उसके पास चले चलेंगे तब शायद वह जी जाय। अन्यथा वह मछली जो सूखे तट पर छोड़ दी जावे, कितनी देर तक जीवित रह सकती है!"

ईश्वर ने कहा, "लौट जाओ। मैं तुम्हें तब तक भीतर न आने दूँगा जब तक कि तुम मेरे सामने वह भूखी आत्मा न लाओगी, क्योंकि उसी की उपस्थिति में मुझे आनंद मिलता है।"

इस अवतरण का मतलब यही है कि अनंत का ध्यान केवल भावना से ही न हो वरन् आत्मा की सारी शक्तियों एवं आत्मा से ही हो।

आत्मा और परमात्मा के मिलन में माया का आवरण ही बाधक है। इसीलिए कबीर ने माया पर भी बहुत कुछ लिखा है। उन्होंने 'रमैनी' और 'शब्द' में माया का इतना वीभत्स और भीषण चित्र खींचा है जो दृष्टि के सामने आते ही हृदय को आक्रोशपूर्ण भावनाओं से भर देता है। ज्ञात होता है, कबीर माया को उस हीन दृष्टि से देखते थे जिससे एक साधु या महात्मा किसी वेश्या को देखता है। मानों कबीर माया का सर्वनाश करना चाहते थे। वास्तव में यही तो उनके रहस्यवाद में, आत्मा और परमात्मा की संधि में बाधा डालने वाली सत्ता थी। उन्होंने देखा संसार सत्पुरुष की आराधना के लिए है। जिस निरंजन ने एक बार विश्व का सृजन कर दिया वह मानो इसलिए कि उसने सत्पुरुष की उपासना के साधन की सृष्टि की। परंतु माया ने उस पर पाप का परदा सा डाल दिया। कितना सुंदर संसार है, उसमें कितनी ही सुंदर वस्तुएँ हैं! वह संसार सुनहला है, उसमें भाँति भाँति की भावनाएँ भरी हैं। गुलाब का फूल है, उसमें मधुर सुगंधि है। सुंदर अमराई है, उसमें सुंदर बौर फूला है। मनोहर इंद्र-धनुष है, उसमें न जाने कितने रंगों की छटा है। पर वह सुगंधि, वह बौर, वह रंग, माया के आतंक से कलुषित है। उस पुण्य के सुंदर भांडार में पाप की वासनापूर्ण मदिरा है। उस सुनहले स्वप्न में भय और आशंका की वेदना है। ऐसा यह मायामय संसार है! पाप के वातावरण से हट कर संसार की सृष्टि होनी

चाहिए। वासना के काले बादलों से अलग संसार का इन्द्र-धनुष जगमगावे। उस संसार में निवास हो पर उसमें आसक्ति न हो। संसार की विभूतियाँ जिनमें माया का अस्तित्व है, नेत्रों के सामने बिखरी रहें पर उनकी ओर आकर्षण न हो। रूप हो पर उसमें अनुरक्ति न हो। संसार में मनुष्य रहे पर माया के कलुषित प्रभाव से सदैव दूर रहे।

अपनी 'रमैनी' और 'शब्द' में कबीर ने माया के संबंध में बड़े अभिशाप दिए हैं। मानों कोई संत किसी वेश्या को बड़े कड़े शब्दों में धिक्कार रहा है और वह चुपचाप सिर झुकाए सुन रही है। वाक्य-बाणों की बौछार इतनी तेज़ हो गई है कि कबीर को पद पद पर उस तेज़ी को सम्हालना पड़ता है। वे एक पद कहकर शांत अथवा चुप नहीं रह सकते। वे बार-बार अनेक पदों में अपनी भर्त्सनापूर्ण भावना को जगा जगा कर माया की उपेक्षा करते हैं। वे कभी उसका वासनापूर्ण चित्र अंकित करते हैं, कभी उसकी हँसी उड़ाते हैं, कभी उस पर व्यंग्य कसते हैं, और कभी क्रोध से उसका भीषण तिरस्कार करते हैं। इतने पर भी जब उनका मन नहीं मानता तो वे थक कर संतों को उपदेश देने लगते हैं। पर जो आग उनके मन में लगी हुई है वह रह रह कर सुलग ही उठती है। अन्य बातों का वर्णन करते करते फिर उन्हें माया की याद आ जाती है, फिर पुरानी छिपी हुई आग प्रचंड हो उठती है और कबीर भयानक स्वप्न देखने वाले की भाँति एक बार काँप कर क्रोध से न जाने क्या कहने लग जाते हैं।

कबीर ने माया की उत्पत्ति की बड़ी गहन विवेचना की है, उतनी शायद किसी ने कभी नहीं की। बीजक के 'आदि मंगल' से यद्यपि वह विवेचना कुछ भिन्न है तथापि कबीर पंथियों में यही प्रचलित है :—

प्रारंभ में एक ही शक्ति थी, सार-भूत एक आत्मा ही थी। उसमें न राग था न रोष, कोई विकार नहीं था। उस सार-भूत आत्मा का नाम था सत्पुरुष। उस सत्पुरुष के हृदय में श्रुति का संचार हुआ और धीरे धीरे श्रुतियाँ सात हो गईं। साथ ही साथ इच्छा का आविर्भाव हुआ। उसी इच्छा से सत्पुरुष ने शून्य में एक विश्व की रचना की। उस विश्व के नियत्रण के लिए उन्होंने छः ब्रह्माओं को उत्पन्न किया। उनके नाम थे :—

ओंकार

सहज

इच्छा
सोहम्
अचिंत और
अक्षर

सत्पुरुष ने उन्हें ऐसी शक्ति प्रदान कर दी थी जिसके द्वारा वे अपने अपने लोक में उत्पत्ति के साधन और संचालन की आयोजना कर सकें। पर सत्पुरुष को अपने काम में बड़ी निराशा मिली। कोई भी ब्रह्मा अपने लोक का संचालन सुचारु रूप से नहीं कर सका। सभी अपने कार्य में कुशलता न दिखला सके, अतएव सत्पुरुष ने एक युक्ति सोची।

चारों ओर प्रशांत सागर था। अनंत जल-राशि थी। एकांत में मौन होकर अक्षर बैठा था। सत्पुरुष ने उसकी आँखों में नींद का एक झोंका ला दिया। वह नींद में झूमने लगा। धीरे-धीरे वह शिशु के समान गहरी निद्रा में निमग्न हो गया। जब उसकी आँख खुली तो उसने देखा कि उस अनंत जल-राशि के ऊपर एक अंडा तैर रहा है। वह बड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा; एकटक उस पर दृष्टि जमाये रहा। उस दृष्टि में बड़ी शक्ति थी। एक बड़ा भारी शब्द हुआ, वह अंडा फूट गया। उसमें से एक बड़ा भयानक पुरुष निकला, उसका नाम रक्खा गया निरंजन। यद्यपि निरंजन उद्धत स्वभाव का था पर उसने सत्पुरुष की बड़ी भक्ति की। उस भक्ति के बल पर उसने सत्पुरुष से यह वरदान माँगा कि उसे तीनों लोकों का स्वामित्व प्राप्त हो।

इतना सब होने पर भी निरंजन मनुष्य की उत्पत्ति न कर सका। इससे उसे बड़ी निराशा हुई। उसने फिर सत्पुरुष की आराधना कर एक स्त्री की याचना की। सत्पुरुष ने यह याचना स्वीकार कर एक स्त्री की सृष्टि की। वह स्त्री सत्पुरुष पर ही मोहित हो गई और सदैव उसकी सेवा में रहने लगी। उससे बार-बार कहा गया कि वह निरंजन के समीप जाय पर फल इसके विपरीत रहा। वह निरंतर सत्पुरुष की ओर ही आकृष्ट थी। सत्पुरुष के अपरिमित प्रयत्नों के बाद उस स्त्री ने निरंजन के पास जाना स्वीकार किया। उससे कुछ समय के बाद तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

१. ब्रह्मा
२. विष्णु
३. महेश

पुत्रोत्पत्ति के बाद निरंजन अदृश्य हो गया, केवल स्त्री ही बची, उस का नाम था माया।

ब्रह्मा ने अपनी माँ से पूछा—

के तोर पुरुष का करि तुम नारी ?

(रमैनी १)

कौन तुम्हारा पुरुष है, तुम किसकी स्त्री हो ?

इसका उत्तर माया ने इस प्रकार दिया—

हम तुम, तुम हम, और न कोई,
तुम मम पुरुष, हमहीं तोर जोई।

कितना अनुचित उत्तर था ! माँ अपने पुत्र से कहती है, केवल हम ही तुम हैं और तुम ही हम, हम दोनों के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है। तुम्हीं मेरे पति हो और मैं ही तुम्हारी स्त्री हूँ।

इसी पद में कबीर ने संसार की माया का चित्र खींचा है। यही संसार का निष्कर्ष है और कबीर को इसी से घृणा है। माँ स्वयं अपने मुख से अपने पुत्र की स्त्री बनती है। इसीलिए कबीर अपनी पहली रमैनी में कहते हैं—

बाप पूत के एकै नारी, एकै माय बियाय।

मातृ-पद को सुशोभित करने वाली वही नारी दूसरी बार उसी पुरुष के उपभोग की सामग्री बनती है। यह है संसार का ओछा और वासना-पूर्ण कौतुक ! माता के पद को सुशोभित करने वाली स्त्री उसी पुरुष-जाति की अंक शायिनी बनती है ! कितना कलुषित संबंध है ! इसीलिए कबीर इस संसार से घृणा करते हैं। वे अपने छठे शब्द में कहते हैं :—

संतो, अचरज एक भौ भारी
पुत्र धरल महतारी !

सत्पुरुष की वही उत्कृष्ट विभूति जो एक बार गौरवपूर्ण वैभव तथा संसार की सारी उज्ज्वल शक्तियों से विभूषित होकर माता बनने आई थी, दूसरे ही क्षण संसार की वासना की वस्तु बन जाती है ! संसार की यह वासनामयी प्रवृत्ति क्या कम हेय है ? कबीर को यही संसार का व्यापार घृणापूर्ण दीख पड़ता था।

माया के इस घृणित उत्तर से ब्रह्मा को विश्वास नहीं हुआ। वह निरंजन की खोज में चल पड़ा। माया ने एक पुत्री का निर्माण कर उसे

ब्रह्मा के लौटने के लिए भेजा पर ब्रह्मा ने यही उत्तर दिया कि मैंने अपने पिता को खोज लिया है, और उनके दर्शन पा लिए हैं। उन्होंने यही कहलाया है कि तुमने (माया ने) जो कुछ कहा है वह असत्य है, और इस असत्य के दंड-स्वरूप तुम कभी स्थिर न रह सकोगी।

इसके पश्चात् ब्रह्मा ने सृष्टि-रचना की जिसमें चार प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हुई।

१ अंडज
२ पिंडज
३ श्वेदज
४ उद्भिज

सारी सृष्टि ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पूजन करने लगी और माया का तिरस्कार होने लगा। माया इसे सहन न कर सकी। जब उसने देखा कि मेरे पुत्र मेरा तिरस्कार करा रहे हैं तो उसने तीन पुत्रियों को उत्पन्न किया जिनसे ३६ रागिनियाँ और ६३ स्वर निकल कर संसार को मोह में आवद्ध करने लगे। सारा संसार माया के सागर में तैरने लगा और सभी ओर मोह और पाखंड का प्रभुत्व दीखने लगा। संत लोग इसे सहन न कर सके और उन्होंने सत्पुरुष से इस कष्ट के निवारण करने की याचना की। सत्पुरुष ने इस अवसर पर एक व्यक्ति को भेजा जो संसार को माया-जाल से हटा कर सत्पुरुष की ओर ही आकर्षित करे। इस व्यक्ति का नाम था।

कबीर

विश्व-निर्माण के विषय में इसी धारणा को कबीर-पंथी मानते हैं।[1] कबीर स्वयं इसे स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि वे सत्पुरुष द्वारा भेजे गए हैं और सत्पुरुष ने अपने सारे गुणों को कबीर में स्थापित कर दिया है। इसके अनुसार कबीर अपने और सत्पुरुष में भेद नहीं मानते। कबीर के रहस्यवाद की विवेचना में हम इस विषय का निरूपण कर ही आए हैं।

'रमैनी' और 'शब्दों' को आद्योपांत पढ़ जाने के बाद हम ठीक विवेचन कर सकते हैं कि कबीर माया का किस प्रकार बहिष्कार या तिरस्कार करते हैं।

---

[1] दामा खेड़ा (छत्तीसगढ़) मठ में प्रचलित।

शंकर और कबीर के मायावाद में सब से बड़ा अंतर यही है कि शंकर की माया केवल भ्रम-मूलक है। उससे रस्सी में साँप का या सीप में रजक का या मृगजल में जल का भ्रम हो सकता है। यह नाम रूपात्मक संसार असत्य होकर भी सत्य के समान भासित होता है किन्तु कबीर ने इस भ्रम की भावना के अतिरिक्त माया को एक चंचल और छद्मवेषी कामिनी का रूप दिया है जो संसार को अपनी ओर आकर्षित कर वासना के मार्ग पर ले जाती है। माया एक विलासिनी स्त्री है। इसीलिए कबीर ने कनक और कामिनी को माया का प्रतीक माना है। इस माया का अपार प्रभुत्व है। वह तीनों लोकों को लूट चुकी है।

रसैया की दुलहिन लूटा बजार।

आध्यात्मिक विवाह

आत्मा से परमात्मा का जो मिलाप होता है उसका मूल कारण प्रेम है। बिना प्रेम के आत्मा परमात्मा से न तो मिलने ही पाती है और न मिलने की इच्छा ही रख सकती है। उपासना से तो श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता है, आराध्य के प्रति भय और आदर होता है पर भक्ति या प्रेम से हृदय में केवल सम्मिलन की आकांक्षा उत्पन्न होती है। जब सूफ़ीमत में प्रेम का प्रधान महत्व है—रहस्यवाद में प्रेम का आदि स्थान है—जो आत्मा में परमात्मा से मिलने की इच्छा क्यों न उत्पन्न हो ? प्रेम ही तो दोनों के मिलन का कारण है।

प्रेम का आदर्श किस परिस्थिति में पूर्ण होता है ? माता-पुत्र, पिता-पुत्र, मित्र-मित्र के व्यवहार में नहीं। उसका एक कारण है। इन संबंधों में स्नेह की प्रधानता होती है। सरलता, दया, सहानुभूति ये सब स्नेह के स्तंभ हैं। इससे हृदय की भावनाएँ एक शांत वातावरण ही में विकसित होती हैं। जीवों के प्रति साधु और संतों के कोमल हृदय का बिंब ही स्नेह का पूर्ण चित्र है। उससे इंद्रियाँ स्वस्थ होकर शांति और सरलता से पुष्ट होती हैं। प्रेम स्नेह से कुछ भिन्न है। प्रेम में एक प्रकार की मादकता होती है। उससे उत्तेजना आती है। इंद्रियाँ मतवाली होकर आराध्य को खोजने लगती हैं। शांति के बदले एक प्रकार की विह्वलता आ जाती है। हृदय में एक प्रकार की हलचल मच जाती है। संयोग में भी अशांति रहती है। मन में आकर्षण, मादकता, अनुराग की प्रवृत्तियाँ और अंतर्प्रवृत्तियाँ एक बार ही जाग्रत हो जाती हैं। इस प्रकार के प्रेम की पूर्णता एक ही संबंध में है और वह संबंध है पति पत्नी का। रहस्यवाद या सूफ़ीमत में आत्मा और परमात्मा के प्रेम की पूर्णता ही प्रधान है; अतएव उसकी पूर्ति तभी हो सकती है जब आत्मा और परमात्मा में पति-पत्नी का संबंध स्थापित हो जाय। कबीर ने लिखा ही है :—

लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल॥

उस संबंध में प्रेम की महान शक्ति छिपी रहती है। इसी प्रेम के सहारे आत्मा में परमात्मा से मिलने की क्षमता आती है। इस प्रेम में न तो वासना

का विस्तार ही रहता है और न सांसारिक सुखों की तृप्ति ही। इसमें तो सारी इंद्रियाँ आकर्षण, मादकता और अनुराग की प्रवृत्तियाँ और अंतर्प्रवृत्तियाँ लेकर स्वाभाविक रूप से परमात्मा की ओर वैसे ही अग्रसर होती हैं जैसे नीची जमीन पर पानी। अतएव ऐसे प्रेम की पूर्ति तभी हो सकती है जब आत्मा और परमात्मा में पति-पत्नी का संबंध स्थापित हो जाय। बिना यह संबंध स्थापित हुए पवित्र प्रेम में पूर्णता नहीं आ सकती। हृदय के स्पष्ट भावों की स्वतंत्र व्यंजना हुए बिना प्रेम की अभिव्यक्ति ही नहीं हो सकती। एक प्राण में दूसरे प्राण के घुल जाने की वांछा हुए बिना प्रेम में पूर्णता नहीं आ सकती। एक भावना का दूसरी भावना में निहित हुए बिना प्रेम में मादकता नहीं आती। अपनी आकांक्षाएँ, आशाएँ, इच्छाएँ, अभिलाषाएँ और सब कुछ आराध्य के चरणों में समर्पित कर देने की भावना आए बिना प्रेम में सहृदयता नहीं आती। प्रेम की सारी व्यंजनाएँ, और व्याख्याएँ एक पति-पत्नी के संबंध में ही निहित हैं। इसीलिए प्रेम की इस स्वतंत्र व्यंजना को प्रकाशित करने के लिए बड़े बड़े रहस्यवादियों ने—ऊँचे से ऊँचे सूफियो ने आत्मा और परमात्मा को पति-पत्नी के संबंध में संसार के सामने रख दिया है। रहस्यवाद के इसी प्रेम में आत्मा स्त्री बनकर परमात्मा के लिए तड़पती है, सूफ़ीमत के इसी प्रेम में जीवात्मा पुरुष बन कर परमात्मा रूपी स्त्री के लिए तड़पता है। इसी प्रेम के संयोग में रहस्यवाद और सूफ़ीमत की पूर्णता है। प्रेम के इस संयोग ही को आध्यात्मिक विवाह कहते हैं।

कबीर ने भी अपने रहस्यवाद में आत्मा को स्त्री मान कर पुरुषरूप परमात्मा के प्रति उत्कृष्ट प्रेम का निरूपण किया है। इस प्रेम के संयोग में जब तक पूर्णता नहीं रहती तब तक आत्मा विरहिणी बन कर परमात्मा के विरह में तड़पा करती है। इस विरह में वासना का चित्र होते हुए भी प्रेम की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति रहती है। वासना केवल प्रेम का स्थूल रूप है जो नेत्रों के सामने नग्न रूप में आ जाता है पर यदि उस वासना में पवित्रता की सृष्टि हुई तो प्रेम का महत्व और भी बढ़ जाता है। रहस्यवाद की इस वासना में सांसारिकता की बू नहीं उसमें आध्यात्मिकता की सुगंधि है। इसीलिए विरह की इस वासना का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है। कबीर ने विरह का वर्णन जिस विदग्धता के साथ किया है उससे यही ज्ञात होता है कि कबीर की आत्मा ने स्वयं ऐसी विरहिणी का वेष रख लिया होगा जिसे बिना प्रियतम के

दर्शन के एक क्षण भर भी शांति न मिलती होगी। जिस प्रकार विरहिणी के हृदय में एक कल्पना करुणा के सौ सौ वेष बना कर आँसू बहाया करती है, उसी प्रकार कबीर के मन का एक भाव न जाने करुणा के कितने रूप रखकर प्रकट हुआ है। विरहिणी प्रतीक्षा करती है, प्रिय की बातें सोचती है, गुण-वर्णन करती है, विलाप करती है, आशा रख कर अपने मन को संतोष देती है, याचना करती है। कबीर की आत्मा ऐसी विरहिणी से कम नहीं है। वह परमात्मा की याद सौ प्रकार से करती है। उसके विरह में तड़पती है, अपनी करुणा-जनक अवस्था पर स्वयं विचार करती है और हजारों आकांक्षाओं का भार लेकर, उत्सुकता और अभिलाषाओं का समूह लेकर, याचना की तीव्र भावना एक साथ ही प्राणों से निकाल कर कह उठती है :—

नैनां नीझर लाइया, रहट बसै निस जाम।
पपिहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कब रे मिलहुगे राम॥

कितनी करुण याचना है! करुणा में घुल कर भिक्षुक प्राणों का कितना विह्वल स्पष्टीकरण है! यह आत्मा का विरह है जिसमें वह रो रो कर कहती है :—

बाल्हा आव हमारे ग्रेह रे,
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब को कहैं तुम्हारी नारी मोको इहै अदेह रे,
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।
अंन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे
ज्यूँ कामी को काम पियारा, ज्यूं प्यासे को नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपकारी, हरि से कहै सुनाइ रे,
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जिव जाइ रे।

इस शब्द में यद्यपि सांसारिकता का वर्णन आ गया है किन्तु आध्यात्मिक विरह को ध्यान में रख कर पढ़ने से सारा अर्थ स्पष्ट हो जाता है और आत्मा और परमात्मा के मिलन की आकांक्षा ज्ञात हो जाती है। ऐसे पदों में यही बात तो विचारणीय है कि सांसारिकता को साथ लिए हुए भी आत्मा का विरह कितने उत्कृष्ट रूप से निभाया जा सकता है। विरह की इस आँच से आत्मा पवित्र होती है और फिर परमात्मा से मिलने के योग्य बन सकती है। बस विरह से आत्मा का अस्तित्व और भी स्पष्ट होकर परमात्मा

से मिलने के योग्य बन जाता है। अंडरहिल ने लिखा है :—

[1]"रहस्यवादी बार-बार हमें यही विश्वास दिलाते हैं कि इससे व्यक्तित्व खोता नहीं वरन् अधिक सत्य बनता है।"

शमसी तबरीज़ ने परमात्मा को पत्नी मान कर अपनी विरह व्यथा इस प्रकार सुनाई है :—

[2]इस पानी और मिट्टी के मकान में तेरे बिना यह हृदय खराब है। या तो मकान के अंदर आ जा, ऐ मेरी जां, या मैं इस मकान को छोड़ देता हूँ।

कबीर ने भी यही विचार इस प्रकार कहा है :—

> कहैं कबीर हरि दरस दिखाओ।
> हमहिं बुलावो कि तुम चल आओ॥

इस प्रकार इस विरह में जब आत्मा अपने सारे विकारों को नष्ट कर लेती है, अपने आँसुओं से अपने सब दोषों को धो लेती है, अपनी आहों से अपने सारे दुर्गुणों को जला लेती है तब कहीं वह इस योग्य बनती है कि परमात्मा के द्वार पर पहुँच कर उनके दर्शन करे और अंत में उनसे संबंध हो जाय।

परमात्मा से शराब-पानी की तरह मिलने के पहले आत्मा का जो

---

[1]Over anb over again they assure us that personality is not lost put made more real.

अंडरहिल रचित मिस्टिसिज्म, पृष्ठ ५०३

[2]در خانۂ آب و گل
بے تست خراب این دل
یا خانہ در آ اے جان
یا خانہ بپر دازم

दर ख़ाना ए आबो गिल
बे तुस्त ख़राब ईं दिल
या ख़ाना दर आ ए जां
या ख़ाना बिपरदाजम्
—दीवाने शमसी तबरीज़

परमात्मा से सामीप्य होता है उसे ही आध्यात्मिक भाषा में 'विवाह' कहते हैं। इस स्थिति में आत्मा अपनी सारी शक्तियों को परमात्मा में समर्पित कर देती है। आत्मा की सारी भावनाएँ परमात्मा की विभूतियों में लीन हो जाती हैं और आत्मा परमात्मा की आज्ञाकारिणी उसी प्रकार बन जाती जिस प्रकार पत्नी पति की। अनेक दिनों की तपस्या के बाद, अनेक के कष्ट उठाने के बाद, आशाओं और इच्छाओं की वेदना भी सह लेने के बाद जब आत्मा को परमात्मा की अनुभूति होने लगती तो वह उमंग में कह उठती है :—

बहुत दिनन थें मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घर बैठे आये।
मंगलचार मांहि मन राखौं,
राम रसांइण रसना चाषौं।
मंदिर मांहि भया उजियारा,
मैं सूती अपना पीव पियारा।
मैं र निरासी जे निधि पाई,
हमहि कहा यहु तुमहि बड़ाई।
कहै कबीर, मैं कछू न कीन्हा,
सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा।

ऐसी अवस्था में आत्मा आनंद से पूर्ण होकर ईश्वर का गान गाने लगती है। उसे परमात्मा की उत्कृष्टता ज्ञात हो जाती है, अपनी उत्सुकता की थाह मिल जाती है। उस उत्सुकता में उसका सारा जीवन एक चक्र की भाँति घूमता रहता हैं। आत्मा अपने आनंद में विभोर होकर परमात्मा की दिव्य शक्तियों का तीव्र अनुभव करने लगती है। उसकी उस दशा में आनंद और उल्लास की एक मतवाली धारा बहने लगती है। उसके जीवन में उत्साह और हर्ष के सिवाय कुछ नहीं रह जाता। माधुर्य में ही उसकी सारी प्रवृत्तियाँ वेग-वती वारि-धारा के समान प्रवाहित हो जाती है, माधुर्य में ही उसके जीवन का तत्त्व मिल जाता है माधुर्य ही में वह अपने अस्तित्व को खो देती है।

यही आध्यात्मिक विवाह का उल्लास है।

आनंद

जब आत्मा परमात्मा की विभूतियों का अनुभव करने को अग्रसर होती है तो उसमें कितनी उत्सुकता और कितनी उमंग रहती है ! उस उत्सुकता और उमंग में उसकी सारी भावनाएँ जाग उठती हैं और वे ईश्वरीय अनुभूति के लिए व्यग्र हो जाती हैं। जब आत्मा अपने विकास के पथ पर परमात्मा की दिव्य शक्तियों को देखती है तो उसे एक प्रकार के अलौकिक आनंद का प्रवाह संसार से विमुख कर देती है। इसीलिए तो परमात्मा की दिव्य शक्तियों को पहिचानने वाले रहस्यवादी संसार के बाह्य चित्र को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं :—

रे यामें क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहि कहत घर मेरा।

(कबीर)

वे जब एक बार परमात्मा के अलौकिक सौंदर्य को अपनी दिव्य आँखों से देख लेते हैं तब उनके हृदय में संसार के लिए कोई आकर्षण नहीं रह जाता। संसार की सुंदर से सुंदर वस्तु उन्हें मोहित नहीं कर सकती। वे उसे माया का जंजाल समझते हैं। आत्मा को मोह में भुलाने का इंद्रधनुष जानते हैं और ईश्वर से दूर हटाने का कुत्सित और कलुषित मार्ग। दूसरी बात यह भी है कि परमात्मा की विभूतियाँ उनको अपने सौंदर्य-पाश में इस प्रकार बाँध लेती हैं कि फिर उन्हें किसी दूसरी ओर देखने का अवसर ही नहीं मिलता अथवा वे दूसरी ओर देखना ही नहीं चाहते। उनके हृदय में आनंद की वह रागिनी बजती है जिसके सामने संसार के आकर्षक से आकर्षक स्वर नीरस जान पड़ने लगते हैं। वे ईश्वरीय अनुभूति के लिए तो सजीव हो जाते हैं पर संसार के लिए निर्जीव। वे ईश्वर के ध्यान में इतने मस्त हो जाते हैं कि फिर उन्हें संसार का ध्यान कभी अपनी ओर खींचता ही नहीं। वे ईश्वर का अस्तित्व ही खोजते हैं—अपने शरीर में बाह्य संसार में नहीं क्योंकि उससे तो वे विरक्त हो चुके हैं। यहाँ एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखना आवश्यक है। यद्यपि यह ईश्वर की अनुरक्ति आत्म को परमात्मा के बहुत निकट ला देती है पर आत्मा की संकुचित सीमा में परमात्मा का

व्यापक रूप स्पष्ट न दीख पड़ने की भी तो संभावना है। वाह्य संसार में ईश्वर की जितनी विभूतियाँ जितनी स्पष्टता के साथ प्रकट हैं उतनी स्पष्टता के साथ, संभव है, आत्मा में प्रकट न हो सकें। विशेषकर ऐसी स्थिति में जब कि आत्मा अभी परमात्मा के मिलन-पथ पर ही है—पूर्ण विकसित नहीं हुई है। ऐसी स्थिति में आत्मा परमात्मा का उतना ही रूप ग्रहण कर सकती है जितना कि उसकी संकुचित परिधि में आ सकता है। परमात्मा के गुणों का ग्रहण ऐसी अवस्था में कम से कम और अधिक से अधिक भी हो सकता है। यह आत्मा के विकसित और अविकसित रूप पर निर्भर है। इसलिए यह आवश्यक है कि परमात्मा के ध्यानोल्लास में मग्न आत्मा संसार का वहिष्कार केवल इसलिए न करे कि संसार में भी परमात्मा की शक्तियों का प्रकाशन है। संसार का सौंदर्य अनंत सौंदर्य को देखने के लिए एक साधन-मात्र है। फ़ारसी के एक कवि ने लिखा है :—

हुस्न ख़ूबां बहरे हक़बीनी मिसाले ऐनकस्त,
मी देहद बीनाई अन्दर दीदए नज़्ज़ारे मन।

कबीर ने बाह्य संसार से तो आँखें बंद कर ली हैं :—

तिल तिल कर यह माया जोरी,
चलत बेर तिणां ज्यूं तोरी।
कहै कबीर तू ता कर दास,
माया मांहै रहै उदास॥

दूसरे स्थान पर वे कहते हैं :—

किसकी ममां चचा पुनि किसका,
किसका पंगुड़ा जोई।
यहु संसार बंजार मंड्या है,
जानेगा जन कोई॥
मैं परदेसी काहि पुकारौं,
यहाँ नहीं को मेरा।
यहु संसार ढूँढ़ि जब देखा,
एक भरोसा तेरा।

इस प्रकार कबीर केवल परमात्मा की एकांत विभूतियों में रमना चाहते

हैं। उन्हें परमात्मा ही में आनंद आता है, संसार में प्रदर्शित ईश्वर के रूपों में नहीं।

परमात्मा के लिए आकांक्षा में एक प्रकार का अलौकिक आनंद है जिसमें प्रत्येक रहस्यवादी लीन रहता है। यह आनंद दो प्रकार से हो सकता है। शारीरिक आनंद, और आध्यात्मिक आनंद। शारीरिक आनंद में शरीर की सारी शक्तियाँ ईश्वर की अनुभूति में प्रसन्न होती हैं, आनंद और उल्लास में लीन हो जाती हैं। आध्यात्मिक आनंद में शरीर की सारी शक्तियाँ लुप्त भी होने लगती हैं। शरीर मृतप्राय-सा हो जाता है। चेतना शून्य होने लगती है, केवल हृदय की भावनाएँ अनंत शक्ति के आनंद में ओत-प्रोत हो जाती हैं। अंडरहिल ने अपनी पुस्तक 'मिस्टिसिज़्म' में इस आनंद की तीन स्थितियाँ मानी हैं। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक। परंतु मैं मानसिक स्थिति को शारीरिक स्थिति में ही मानता हूँ। उसका प्रधान कारण तो यही है कि बिना मानसिक आनंद के शारीरिक आनंद हो ही नहीं सकता। जब तक मन में ईश्वर की अनुभूति का आनंद न आयेगा तब तक शरीर पर उस आनंद के लक्षण क्या प्रकट हो सकेंगे! दूसरा कारण यह है कि आत्मा की जो दशा मानसिक आनंद में होगी वही शारीरिक आनंद में भी। ऐसी स्थिति में जब दोनों का रूप और प्रभाव एक ही है तो उन्हें भिन्न मानना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। अब हम दोनों स्थितियों पर स्वतंत्र रूप से प्रकाश डालेंगे।

पहले उस आनंद का रूप शारीरिक स्थिति में देखिए। जब आत्मा ने एक बार परमात्मा की अलौकिक शक्तियों से परिचय पा लिया तब उस परिचय की स्मृति में हृदय की सारी भावनाएँ आनंद में परिप्रोत हो जाती हैं। उनका असर प्रत्येक इंद्रिय पर पड़ने लगता है उस समय रहस्यवादी अपने अंगों में एक प्रकार का अनोखा बल अनुभव करने लगता है। उसके प्रत्येक अवयव आनंद से चंचल हो उठते हैं। अंग-प्रत्यंग थिरकने लगता है। उसकी विविध इंद्रियाँ आनंद से नाच उठती हैं! कबीर ने इसी शारीरिक आनंद का कितना सुंदर वर्णन किया :—

हरि के षारे बड़े पकाये, जिनि जारे तिन पाये।
ग्यांन अचेत फिरैं नर लोई,
ताथैं जनमि जनमि डहकाये।

धौल मंदलिया बैल रबाबी,
कऊआ ताल बजावै,
पहरि चोलनां गादह नाचै,
भैंस निरति करावै।
स्यंघ बैठा पांन कतरै,
घूँस गिलौरा लावै,
उदरी बपुरी मङ्गल गावै,
कछू एक आनँद सुनावै।
कहै कबीर सुनो रे सँतो,
गडरी परबत खावा,
चकवा बैठि अँगारे निगलै,
समँद आकासां धावा।

कबीर भिन्न भिन्न इंद्रियों के उल्लास का निरूपण भिन्न भिन्न जानवरों के कार्य-व्यापारों में ही कर सके। ज्ञानेंद्रियों अथवा कर्मेन्द्रियों का विलक्षण उल्लास संसार के किस रूपक में वर्णन किया जा सकता था? शारीरिक आनंद की विचित्रता के लिए "स्यंघ बैठा पान कतरै, घूँस गिलौरा लावै" के अतिरिक्त और कहा ही क्या जा सकता था! रहस्यवादी उस विलक्षणता को किस प्रकार प्रकट करता! सीधे-सादे शब्दों में अथवा वर्णनों में उस विलक्षणता का प्रकाशन ही किस प्रकार हो सकता था? इंद्रियों के उस उल्लास को कबीर के इस पद में स्पष्ट प्रकाशन मिल गया है। यही शारीरिक आनंद का उदाहरण है।

अंडरहिल ने लिखा है कि शारीरिक उल्लास में एक मूर्छा सी आ जाती है। हाथ-पैर ठंडे और निर्जीव हो जाते हैं। किसी बात के ध्यान में आने से अथवा किसी वस्तु को देखने से परमात्मा की याद आ जाती है। और वह याद इतनी मतवाली होती है कि रहस्यवादी को उसी समय मूर्छा आ जाती है। वह मूर्छा चाहे थोड़ी देर के लिए हो अथवा अधिक देर के लिए। मेरे विचार में मूर्छा का संबंध हृदय से है शरीर से नहीं। यदि हृदय स्वाभाविक गति में रहे और शरीर को मूर्छा आ जाय अथवा शरीर के अंग कार्य न कर सकें, वे शून्य पड़ जायँ तो वह शारीरिक स्थिति कही जा सकती है। जहाँ आत्मा मूर्छित हुई, उसके साथ ही साथ स्वभावतः शरीर भी

मूर्छित हो जायगा। शरीर तो आत्मा से परिचालित है, स्वतंत्र रूप से नहीं। जहाँ तक हृदय की मूर्छा से संबंध है, मैं उसे आध्यात्मिक स्थिति ही मान सकूँगा, शारीरिक नहीं। शारीरिक उल्लास के विवेचन में अंडरहिल ने एक उदाहरण भी दिया है।

[1]जिनेवा की कैथराइन जब मूर्छितावस्था से उठी तो उसका मुख गुलाबी था, प्रफुल्लित था और ऐसा मालूम हुआ मानों उसने कहा "ईश्वर के प्रेम से मुझे कौन दूर कर सकता है?"

यदि शारीरिक उल्लास में हाथ-पैरों में रक्त का संचालन मंद पड़ जाता है, शरीर ठंडा और दृढ़ हो जाता है तो कैथराइन का गुलाबी मुख शारीरिक उल्लास का परिचायक नहीं था।

आध्यात्मिक आनंद में आत्मा इस संसार के जीवन में एक अलौकिक जीवन की सृष्टि कर लेती है। इस स्थिति में आत्मा केवल एक ही वस्तु पर केंद्रीभूत हो जाती है। और वह वस्तु होती है परमात्मा की प्रेम विभूति।

राम रस पाइया रे ताँ बिसरि गये रस और।

(कबीर)

उस समय बाह्येंद्रियों से आत्मा का संबंध नहीं रह जाता। आत्मा स्वतंत्र होकर अपने प्रेममय दिव्य जीवन की सृष्टि कर लेती है। ऐसी स्थिति में आत्मा भावोन्माद में शरीर के साथ मूर्छित भी हो सकती है। उस समय न तो आत्मा ही संसार की कोई ध्वनि ग्रहण कर सकती है और न शरीर ही किसी कार्य का संपादन कर सकता है। आत्मा और शरीर की यह संमिलित मूर्छा रहस्यवादी की उत्कृष्ट सफलता है।

आत्मा की उस मूर्छा के पहले या बाद ईश्वरीय प्रेम का स्रोत आत्मा से इतने वेग से उमड़ता है कि उसके सामने संसार की कोई भी भावना नहीं ठहर सकती। उस समय आत्मा में ईश्वर का चित्र अंतर्हित रहता है। उस

---

[1]And when she came forth from her hiding place her face was rosy as it might be a cherib's; and it seemed as if she might have said, "Who shall separate me from the love of God?"

अंडरहिल रचित मिस्टिसिज़्म, पृष्ठ ४३३

अलौकिक प्रेम के प्रवाह में इतनी शक्ति होती है कि वह आत्मा के सामने अव्यक्त अलौकिक सत्ता का एक चित्र-सा खींच देती है। आत्मा में अंतर्हित ईश्वरीय सत्ता स्पष्ट रूप से आत्मा के सामने आ जाती है। उस भावोन्माद में इतना बल होता है कि आत्मा स्वयं अपने में से ईश्वर को निकाल कर उसकी आराधना में लीन हो जाती है। कबीर इसी अवस्था को इस प्रकार लिखते हैं:—

जलि जाई थलि ऊपजी
आई नगर मैं आप,
एक अचंभा देखिए
बिटिया जायो बाप।

प्रेम की चरम सीमा में, आध्यात्मिक आनंद के प्रवाह में आत्मा जो परमात्मा से उत्पन्न है अपने में अंतर्हित परमात्मा का चित्र खींच लेती है मानों 'बिटिया' अपने बाप को उत्पन्न कर देती है। यही उस आध्यात्मिक आनंद के प्रवाह की उत्कृष्ट सीमा है। आत्मा उस समय अपना व्यक्तित्व ही दूसरा बना लेती है। आध्यात्मिक आनंद के तूफ़ान में आत्मा उड़ कर अनंत सत्य की गोद में जा गिरती है, जहाँ प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

गुरु

गुरु प्रसाद अकल भई तोको नहिं तर था बेगाना ।

(कबीर)

रामानंद के पैरों से ठोकर खाकर उषा-वेला में कबीर ने जो गुरु-मंत्र सीखा था, उसमें गुरु के प्रति कितनी श्रद्धा और भक्ति थी! राम-मंत्र के साथ साथ गुरु का स्थान कबीर के हृदय में बहुत ऊँचा था उनके विचारानुसार गुरु तो ईश्वर से भी बड़ा है। बिना उसकी सहायता के आत्मा की अशुद्धि से परमात्मा की प्राप्ति भी नहीं हो सकती। अतएव जो व्यक्ति परमात्मा के मिलन में आवश्यक रूप से वर्तमान है, जो शक्ति अनंत-संयोग के लिए नितांत आवश्यक है, उस शक्ति का कितना मूल्य है, यह शब्दों में कैसे बतलाया जा सकता है? गुरु की कृपा ही आत्मा को परमात्मा से मिलने के रास्ते पर ले जाती है। अतएव गुरु जो आध्यात्मिक जीवन का पथ-प्रदर्शक है, ईश्वर से भी अधिक आदरणीय है। इसीलिए तो कबीर के हृदय में शंका हो जाती है कि यदि गुरु और गोविंद दोनों खड़े हुए हैं तो पहले किसके चरण स्पर्श किए जायँ मैं गुरु ही के चरण छुए जाते हैं जिन्होंने स्वयं गोविंद को बतला दिया है।

कबीर ने तो सदैव गुरु के महत्व को तीव्र से तीव्र शब्दों में घोषित किया है। बिना गुरु के यदि कोई चाहे कि वह ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करले तो यह कठिन ही नहीं वरन् असंभव है। "गुरु बिन चेला ज्ञान न लहै" का सिद्धांत तो सदैव उनकी आँखों के सामने था। ऐसा गुरु जो परमात्मा का ज्ञान कराता है, कबीर के मतानुसार आध्यात्मिक जीवन के लिए परमावश्यक है।

कबीर के विचारों में गुरु आत्मा और परमात्मा में मध्यस्थ है। वही दोनों का संयोग कराता है। संयोगावस्था में फिर चाहे गुरु की आवश्यकता न हो पर जब तक आत्मा और परमात्मा में संयोग नहीं हो जाता तब तक गुरु का सदैव साथ होना चाहिए, नहीं तो आत्मा न जाने रास्ता भूल कर कहाँ चली जाय!

कबीर ने अपने रेख़तों में गुरु की प्रशंसा जी खोल कर की है :—

गुरुदेव बिन जीव की कल्पना ना मिटै
 गुरुदेव बिन जीव का भला नाहीं,
गुरुदेव बिन जीव का तिमर नासै नहीं
 समुझि विचार ले मनै मांही।
राह बारीक गुरुदेव तें पाइये
 जनम अनेक की अटक खोलै,
कहै कब्बीर गुरुदेव पूरन मिलै
 जीव और सीव तब एक तोलै॥

करौ सतसंग गुरुदेव से चरन गहि
 जासु के दरस तें भर्म भागै,
सील औ साँच संतोष आवै दया
 काल की चोट फिर नाहिं लागै।
काल के जाल में सकल जिव बंधिया
 बिन ज्ञान गुरुदेव घट अंधियारा,
कहै कब्बीर जन जनम आवै नहीं
 पारस परस पद होय न्यारा॥

गुरुदेव के भेव को जीव जाने नहीं
 ज़ीव तो आपनी बुद्धि ठानै,
गुरुदेव तो जीव को काढ़ि भव-सिंध तें
 फेरि लै सुक्ख के सिंध आनै।
बंद करि दृष्टि को फेरि अंदर करै
 घट का पाट गुरुदेव खोलै,
कहत कब्बीर तू देख संसार में
 गुरुदेव समान कोई नांहि तोलै॥

सभी रहस्यवादियों ने आत्मा की प्रारंभिक यात्रा में गुरु की आवश्यकता मानी है। जलालुद्दीन रूमी ने अपनी मसनवी के भाग १ में पीर (गुरु) की प्रशंसा लिखी है :—

ओ सत्य के वैभव, हुसामुद्दीन, काग़ज़ के कुछ पन्ने और ले और पीर के वर्णन में उन्हें कविता से जोड़ दे।

यद्यपि तेरे निर्बल शरीर में कुछ शक्ति नहीं है तथापि (तेरी शक्ति के) सूर्य विना हमारे पास प्रकाश नहीं है।

पीर (पथ-प्रदर्शक) ग्रीष्म (के समान) है, और (अन्य) व्यक्ति शरत्काल (के समान) हैं। (अन्य) व्यक्ति रात्रि के समान हैं, और पीर चंद्रमा है।

मैंने (अपनी) छोटी निधि (हुसामुद्दीन) को पीर (वृद्ध) का नाम दिया है। क्योंकि वह सत्य से वृद्ध (बनाया गया) है। समय से वृद्ध नहीं (बनाया गया)।

वह इतना वृद्ध है कि उसका आदि नहीं है; ऐसे अनोखे मोती का कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है।

वस्तुतः पुरानी शराब अधिक शक्तिशालिनी है, निस्संदेह पुराना सोना अधिक मूल्यवान है।

पीर चुनो, क्योंकि बिना पीर के यह यात्रा बहुत ही कष्ट-मय, भयानक और विपत्ति-मय है।

बिना साथी के तुम सड़क पर भी उद्भ्रांत हो जाओगे जिस पर तुम अनेक बार चल चुके हो।

जिस रास्ते को तुमने बिलकुल भी नहीं देखा उस पर अकेले मत चलो, अपने पथ-प्रदर्शक के पास से अपना सिर मत हटाओ।

मूर्ख, यदि उसकी छाया (रक्षा) तेरे ऊपर हो तो शैतान की कर्कश ध्वनि तेरे सिर को चक्कर में डाल कर तुझे (यहाँ-वहाँ) घुमाती रहेगी। शैतान तुझे रास्ते से बहका ले जायगा (और) तुझे 'नाश' में डाल देगा; इस रास्ते में तुझ से भी चालाक हो गए हैं (जो बुरी तरह से नष्ट किये गए हैं।)

सुन (सीख) क़ुरान से—यात्रियों का विनाश! नीच इबलिस ने उनसे क्या व्यवहार किया है!!

वह उन्हें रात्रि में अलग, बहुत दूर, ले गया—सैकड़ों हज़ारों वर्षों की यात्रा में—उन्हें दुराचारी ने (अच्छे कार्यों से रहित) नग्न कर दिया।

उनकी हड्डियाँ देख—उनके बाल देख! शिक्षा ले, और उनकी

ओर अपने गधे (इंद्रियों) को मत हाँक। अपने गधे की गर्दन पड़क और उसे रास्ते की तरफ़ उनकी ओर ले जा जो रास्ते को जानते हैं और उस पर अधिकार रखते हैं।

ख़बरदार! अपना गधा मत जाने दे, और अपने हाथ उस पर से मत हटा, क्योंकि उसका प्रेम उस स्थान से है जहाँ हरी पत्तियाँ बहुत होती हैं।

यदि तू एक क्षण के लिए भी असावधानी से उसे छोड़ दे तो वह उस हरे मैदान की दिशा में अनेक मील चला जायगा। गधा रास्ते का शत्रु है, (वह) भोजन के प्रेम में पागल-सा है। ओः, बहुत से हैं जिनका उसने सर्वनाश किया है!

यदि तू रास्ता नहीं जानता, तो जो कुछ गधा चाहता है, उसके विरुद्ध कर। वह अवश्य ही सच्चा रास्ता होगा।

(पैग़म्बर ने कहा), उन (स्त्रियों) की संमति ले, और फिर (जो सलाह वे देती हैं) उसके विरुद्ध कर। जो उनकी अवज्ञा नहीं करता, वह नष्ट हो जायगा।

(शारीरिक) वासनाओं और इच्छाओं का मित्र मत बन—क्योंकि वे ईश्वर के रास्ते से अलग ले जाती हैं।

× × ×

कबीर ने भी गुरु को सदैव अपना पथ-प्रदर्शक माना है। उन्होंने लिखा है :—

पासा पकड़या प्रेम का,
सारी किया सरीर,
सतगुरु दांव बताइया,
खेलै दास कबीर।

मध्वाचार्य के द्वैतवाद में जिस प्रकार आत्मा और परमात्मा के बीच में 'वायु' का विशिष्ट स्थान है उसी प्रकार कबीर के ईश्वरवाद में गुरु का। कबीर ने जिस गुरु को ईश्वर का प्रतिनिधि माना है उसका परिचय क्या है?

(क) ज्ञान उसका शब्द हो। लौकिक और व्यावहारिक ही नहीं, वरन् आध्यात्मिक भी। उसमें यह शक्ति हो कि वह पतित से पतित आत्मा में ज्ञान का संचार कर उसे सत्पथ की ओर अग्रसर करा दे। उसके हृदय में

ज्ञान का प्रवाह इतना अधिक हो कि शिष्य उसमें बह जाय। उसके ज्ञान से आत्मा के हृदय का अंधकार दूर हो जाय और वह अपने चारों ओर की वस्तुएँ स्पष्ट रूप से देख ले। उसे मालूम हो जाय कि वह किस ओर जा रहा है—पाप और पुण्य किसे कहते हैं, उन्नति और अवनति का क्या तात्पर्य है। लौकिक और अलौकिक में क्या अंतर है। आत्मा को प्रकाशित करने के क्या साधन हैं।

पीछे लागा जाइ था,
लोक वेद के साथ।
आगे थैं सतगुरु मिल्या,
दीपक दिया हाथ॥

... ...

माया दीपक नर पतँग,
भ्रमि भ्रमि इवैं पड़ंत।
कहै कबीर गुरु ज्ञान थैं,
एक आध उबरंत॥

(ख) पथ-प्रदर्शन कार्य हो। आध्यात्मिक ज्ञान के पथ पर जहाँ पग पग पर आत्मा को ठोकरें खानी पड़ती हों, जहाँ आत्मा रास्ता भूल जाती है, वहाँ सहारा देकर निर्दिष्ट मार्ग बतलाना तो गुरु ही का काम है। माया मोह की मृग-तृष्णा में, स्त्री के सुकुमार शरीर की लालसा में, कपट और छल की क्षणिक आनंद-लिप्सा में आत्मा जब कभी निर्बल हो जाय तो उसमें ज्ञान का तेज डाल कर गुरु उसे पुनः उत्साहित करे। शिष्य के सामने वह स्पष्ट

काया कमंडल भरि लाया,
उज्ज्वल निर्मल नीर,
तन मन जोबन भरि पिया,
प्यास न मिटी सरीर।

दिखला दे कि उसमें वह ऐसा तेज भर दे जिससे केवल उसके हृदय में ही प्रकाश न हो वरन् चारों ओर उसके पथ पर भी प्रकाश की छटा जगमगा जाय। शिष्य में संसार की माया की अनुरक्ति न हो,

कबीर माया मोहनी,
सब जग घाल्या घाणि,

सतगुरु की किरपा भई,
नहीं तो करती भांड़।

वह झूठा वेष न रखे,

वैसनौं भया तो का भया,
बूझा नहीं विवेक,
छापा तिलक बनाइ करि,
दगधा लोक अनेक।

वह कुसंगति में न पड़े,

निरमल बूँद आकाश की
पड़ि गई भोमि विकार,

वह निंदा न करे,

दोष पराये देख कर,
चला हसंत हसंत,
अपनै चयंत न आवई,
जिनकी आदि न अंत।

यदि ऐसे दोष शिष्य में कभी आ भी जायँ तो गुरु में ऐसी शक्ति है कि वह शिष्य को उचित मार्ग का निर्देश कर दे।

इसी कारण गुरुका महत्त्व ईश्वर के महत्त्व से भी कहीं बढ़कर है। [1]घेरण्ड संहिता के तृतीयोपदेश में गुरु के संबंध में कुछ श्लोक दिए गए हैं। वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उनका अर्थ यही है कि केवल वही ज्ञान उपयोगी और शक्ति-संपन्न है जो गुरु ने अपने ओठों से दिया है; नहीं तो वह ज्ञान निरर्थक, अशक्त और दुःखदायक हो जाता है। 'इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि गुरु पिता

---

[1]भवेद्वीर्यवती विद्या गुरु वक्त्र समुद्भवा
अन्यथा फलहीना स्यान्निर्वीर्याप्यति दुःखदा—
॥ घेरंड संहिता तृतीयोपदेश, श्लोक १० ॥

गुरु पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो न संशयः
कर्मणा मनसा वाचा तस्मात्सर्वैः प्रसेव्यते ॥ " श्लोक १२ ॥

गुरुप्रसादतः सर्वं लभ्यते शुभमात्मनः
तस्मात्सेव्यो गुरुर्नित्यमन्यथा न शुभं भवेत् ॥ " श्लोक १४ ॥

है, गुरु माता है और यहाँ तक कि गुरु ईश्वर भी है। इसी कारण उसकी सेवा मनसा-वाचा-कर्मणा होनी चाहिए। गुरु की कृपा से सभी शुभ वस्तुओं की प्राप्ति होती है। इसलिए गुरु की सेवा नित्य ही होनी चाहिए, नहीं तो कोई कार्य मंगल-मय नहीं हो सकता।'

ऐसे गुरु की ईश्वरानुभूति महान् शक्ति है। वह अपने शिष्य को उन 'शब्दों' का उपदेश दे, जिनसे वह परमात्मा के दैवी वातावरण में साँस ले सके। उसके उपदेश वाण के समान आकर शिष्य के मोहजाल को नष्ट कर दें और शिष्य अपनी अज्ञानता का अनुभव कर ईश्वर से मिलने की ओर अग्रसर हो। ईश्वर की अनुभूति प्राप्त कर जब गुरु शिष्य को ईश्वर के दिव्य प्रकाश से परिचित करा देता है, तब गुरु का कार्य समाप्त हो जाता है और आत्मा स्वयं परमात्मा की ओर बढ़ जाती है जहाँ किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती। गुरु से प्रोत्साहित होकर, गुरु से शक्तियाँ लेकर, आत्मा अपने को परमात्मा में मिला देती है, जहाँ वह अनंत संयोग में लीन हो जाती है। ऐसी अवस्था में भी गुरु उस आत्मा पर प्रकाश डालता रहता है जिस प्रकार नक्षत्र उषा की उज्ज्वल प्रकाश-रश्मियों के आने पर भी अपना झिलमिल प्रकाश फेंकते रहते हैं।

हठयोग

कबीर के 'शब्दों' में हठयोग के भी कुछ सिद्धान्त मिलते हैं। यद्यपि उन सिद्धांतों का स्पष्ट रूप कबीर की कविता में प्रस्फुटित नहीं हुआ तथापि उनका वाह्य रूप किसी न किसी ढंग से अवश्य प्रकट हो गया है। कबीर अपढ़ थे। अतएव उन्होंने हठयोग अथवा राजयोग के ग्रंथों को तो छुआ भी न होगा। योग का जो कुछ ज्ञान उन्हें सत्संग और रामानंद आदि से प्रसाद स्वरूप मिल गया होगा, उसी का प्रकाशन उन्होंने अपने बेढंगे पर सच्चे चित्रों में किया है। कबीर अपने समय के महात्मा थे। उनके पास अनेक प्रकार के मनुष्यों की भीड़ अवश्य लगी रहती होगी। ईश्वर, धर्म, और वैराग्य के वातावरण में उनका योग के वाह्य रूप से परिचित होना असंभव नहीं था।

योग का शाब्दिक अर्थ जोड़ना (युज् धातु) है। आत्मा जिस शारीरिक या मानसिक साधन से परमात्मा में जुड़ जावे, वही योग है। माया के प्रभाव से रहित होकर जब आत्मा सत्य का अनुभव कर समाधिस्थ हो परमात्मा के रूप में निमग्न हो जाती है उसी समय योग सफल माना जाता है।

योग के अनेक प्रकार हैं:—

१ ज्ञानयोग
२ राजयोग
३ हठयोग
४ मंत्रयोग
५ कर्मयोग, आदि

आत्मा अनेक प्रकार से परमात्मा में संबद्ध हो सकती है। ज्ञान के विकास से जब आत्मा विवेक और वैराग्य में अपने अस्तित्व को भूल जाती है और अपने अस्तित्व के कण में परमात्मा का अविनाशी रूप देखती है तब मुक्ति में दोनों का अविदित संमिलन हो जाता है (ज्ञानयोग)। आत्मा कार्यों का परिणाम सोचे बिना निष्काम भाव से कार्य कर परमात्मा में लीन हो जाती है (कर्मयोग)। आत्मा परमात्मा के नाम अथवा उससे संबंध रखने वाली किसी पंक्ति का उच्चारण करते करते, किसी कार्य-विशेष

को करते हुए, ध्यान में मग्न हो उससे मिल जाती है (मंत्रयोग)। अपने अंगों और श्वास पर अधिकार प्राप्त कर उनका उचित संचालन करते हुए (हठयोग) एवं मन को एकाग्र कर परमात्मा के दिव्य स्वरूप पर मनन करते हुए आत्मा समाधिस्थ हो ईश्वर से मिल जाती है (राजयोग)। इस भाँति अनेक प्रकार से आत्मा परमात्मा में संबद्ध हो सकती है ! हठयोग और राजयोग वस्तुतः एक ही भाग के दो अंग हैं। हृदय को संयत करने के पहले (राजयोग) अंगों को संयत करना आवश्यक है (हठयोग)। बिना हठयोग के राजयोग नहीं हो सकता। अतएव हठयोग राजयोग की पहली सीढ़ी है—हठयोग और राजयोग दोनों मिल कर एक विशिष्ट योग की पूर्ति करते हैं। कबीर के संबंध में हमें यहाँ विशेषतः हठयोग पर विचार करना है क्योंकि कबीर के शब्दों में हठयोग ही का रूप मिलता है।

हठयोग का सारभूत तत्त्व तो बलपूर्वक ईश्वर से मिलना है। उसमें शारीरिक और मानसिक परिश्रम की आवश्यकता विशेष रूप से पड़ती है। शरीर को अधिकार में लाने के लिए कुछ आसनों का अभ्यास करना पड़ता है—ख़ासकर श्वास का आवागमन संचालित करना पड़ता है और मन को रोकने के लिए ध्यानादि की आवश्यकता पड़ती है। [1]योग-सूत्र के निर्माता पतंजलि ने (ईसा की दूसरी शताब्दी पहले) योग साधन के लिए आठ अंग माने हैं। वे क्रमशः इस प्रकार हैं :—

१ यम
२ नियम
३ आसन
४ प्राणायाम
५ प्रत्याहार
६ धारणा
७ ध्यान और
८ समाधि

यम और नियम में आचार को परिष्कृत करने की आवश्यकता पड़ती

---

[1]यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयोऽष्टावंगानि
[पतंजलि योगदर्शन २—साधनपाद, सूत्र २९

है। यम में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह होना चाहिए।[1] नियम में पवित्रता, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान की प्रधानता है।[2] आसन में[3] ईश्वरीय चिंतन के लिए शरीर की भिन्न भिन्न स्थितियों का विचार है। शरीर की ऐसी दशा हो जिसमें वह स्थिर होकर हृदय को ईश्वरीय चिंतन के लिए उत्साहित करे। आसन पर अधिकार हो जाने पर योगी शीत और ताप से प्रभावित नहीं होता।[4] शिवसंहिता के अनुसार ८४ आसन हैं।[5] उनमें से चार मुख्य हैं—सिद्धासन, पद्मासन, उग्रासन और स्वस्तिकासन। प्रत्येक आसन से शरीर का कोई न कोई भाग शक्तियुक्त बनता है। शरीर रोग-रहित हो जाता है।

प्राणायाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्राणायाम से तात्पर्य यही है कि वायु-स्नायु या (Vagus nerve) स्नायु-केंद्रों पर इस प्रकार अधिकार प्राप्त कर लिया कि श्वासोच्छ्वास की गति नियमित और नाद-युक्त (rhythmic) हो जाय। आसन के सिद्ध हो जाने पर ही श्वास और प्रश्वास की गति नियमित करनेवाले प्राणायाम की शक्ति उद्भासित होती है।[6] प्राणायाम से प्रकाश का आवरण नष्ट हो जाता है और मन में एकाग्रता की योग्यता आ जाती है।[7] प्राणायाम में श्वास-प्रश्वास की वायु के विशेष

---

[1] तत्राहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहायमसाः

[पतंजलि योग-सूत्र २—साधनपाद, सूत्र ३०

[2] शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि

नियमः [" " " सूत्र ३२

[3] स्थिर सुखमासनम् [" " " सूत्र ४६

[4] ततो द्वन्द्वानभिघातः [" " " सूत्र ४८

[5] चतुरशीत्यासनानि संति नाना विधानि च

[शिवसंहिता, तृतीय पटल, श्लोक ८४

[6] तस्मिन्सति श्वास प्रश्वास योर्गति विच्छेदः

प्राणायामः [पतंजलि योगसूत्र २—साधनपाद, सूत्र ४९

[7] ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् [" " सूत्र; ५२

धारणा सु च योग्यता मनसः [पतंजलि योग-सूत्र,

२—साधनपाद, सूत्र ५३

नाम हैं। प्रश्वास (बाहर छोड़ी जाने वाली वायु) का नाम रेचक है, श्वास (भीतर जाने वाली वायु) को पूरक कहते हैं और भीतर रोकी जाने वाली वायु कुंभक कहलाती है। शिवसंहिता में प्राणायाम करने की आरंभिक विधि का सुंदर निरूपण किया गया है।[1]

फिर बुद्धिमान अपने दाहिने अँगूठे से पिंगला (नाक का दाहिना भाग) बंद करे। इडा (बाँये भाग) से साँस भीतर खींचे, और इस प्रकार यथाशक्ति वायु अंदर ही बंद रखे। इसके पश्चात् ज़ोर से नहीं, धीरे धीरे दाहिने भाग से साँस बाहर निकाले। फिर वह दाहिने भाग से साँस खींचे, और यथा-शक्ति उसे रोके रहे, फिर बाँयें भाग से ज़ोर से नहीं, धीरे-धीरे वायु बाहर निकाल दे।

प्रत्याहार में इंद्रियाँ अपने कार्यों से अलग हट कर मन के अनुकूल हो जाती हैं। अपने विषयों की उपेक्षा कर इंद्रियाँ चित्त के स्वरूप का अनुकरण करती हैं।[2] साधारण मनुष्य अपनी इंद्रियों का दास होता है। इंद्रियों के दुःख से उसे दुःख होता है और सुख से सुख। योगी इससे भिन्न होता है। यम, नियम, आसन और प्राणायाम की साधना के बाद वह अपनी इंद्रियों को अपने मन के अनुरूप बना लेता है। जब वह नहीं देखना चाहता तो उसकी आँखें बाह्य पदार्थ के चित्र को ग्रहण ही नहीं करतीं, चाहे वे पूर्ण रीति से खुली ही क्यों न हों। जब वह स्वाद नहीं लेना चाहता तो उसकी जिह्वा सारे पदार्थों का स्वाद-गुण अनुभव ही न करे चाहे वे उस पर रखे ही क्यों न हों। यही नहीं, वे इंद्रियाँ मन के इतने वश में हो जाती हैं कि मन

---

[1] ततश्च दक्षांगुष्ठेन निरुद्धय पिंगलां सुधी
इडया पूरयेद्वायुं यथाशक्त्या तु कुम्भयेत्
ततस्त्यक्त्वा पिंगलयाशनैरेव न वेगतः
[शिवसंहिता, तृतीय पटल, श्लोक २२
पुनः पिंगलयाऽऽपूर्य यथाशक्त्या तु कुम्भयेत
इडया रेचयेद्वायुं न वेगेन शनैः शनैः
[शिवसंहिता, तृतीय पटल, श्लोक २३

[2] स्वविषया संप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः
[पतंजलि योग-सूत्र, २—साधनपाद, सूत्र ५४

की वांछित वस्तुएँ भी वे मन के समक्ष रख देती हैं।[1] यदि मन संगीत सुनना चाहता है तो कर्णेंद्रिय मधुर से मधुर शब्द-तरंगों को ग्रहण कर मन के समीप उपस्थित कर देती है। यदि मन सुंदर दृश्य देखना चाहता है तो नेत्र चित्र-तरंगों को ग्रहण कर मन के पटल पर पटल सुंदर चित्र अंकित कर देता है। कहने का तात्पर्य यही है कि इंद्रियाँ मन के स्वरूप ही का अनुकरण करने लगती हैं। प्राणायाम से मन तो नियंत्रित होता ही है, प्रत्याहार से इंद्रियाँ भी नियंत्रित हो जाती हैं।

धारणा में मन किसी स्थान अथवा वस्तु-विशेष पर दृढ़ या केंद्रीभूत हो जाता है।[2] नाभि, हृदय, कंठ इनमें से किसी एक पर, एक समय में मन चक्कर लगाता रहे। यहाँ तक कि वह स्थान चित्र का रूप लेकर स्पष्ट सामने आ जाय।

ध्यान में अनवरत रूप से वस्तु-विशेष पर चिंतन कर[3] अन्य विचारों की सीमा से मन को बाहर कर देना होता है! एक ही बात पर निरंतर रूप से मन की शक्तियों को एकाग्र करने की आवश्यकता है।

धारणा और ध्यान के बाद समाधि आती है। समाधि में एकाग्रता चरम सीमा पर पहुँच जाती है। जिस वस्तु-विशेष का ध्यान किया जाता है, उसी वस्तु का आतंक सारे हृदय में इस प्रकार हो जाय कि हृदय अपने अस्तित्व ही को भुला दे। केवल एक भाव—एक विचार ही का प्रकाश रह जाय। उसी प्रकाश में हृदय समा जाय[4] मन शरीर से मुक्त होकर एक अनंत प्रकाश में लीन हो जाय।[5] यही तीनों धारणा, ध्यान, समाधि

---

[1] ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्—
[पतंजलि योगसूत्र, २—साधनपाद, सूत्र ५४

[2] देश बन्धश्चित्तस्य धारणा—३—विभूतिपाद, सूत्र १

[3] तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्— " सूत्र २

[4] तदेवार्थमात्र निर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः—
३—विभूतिपाद, सूत्र ३

[5] घटाद्भिन्नं मनः कृत्वा ऐक्यं कुर्यात् परात्मनि
समाधिं तं विजानीयान्मुक्त संज्ञो दशादिभिः—
घेरंड संहिता, सप्तमोपदेश, श्लोक ३

मिलकर संयम का रूप लेते हैं।[1]

कबीर के 'शब्दों' में हमें योग के इन आठ अंगों का रूप तो मिलता है पर बहुत विकृत। उसमें केवल भाव है, उसका स्पष्टीकरण नहीं है। हम कबीर के 'शब्दों' में यम का विशेष विवरण पाते हैं।

यम :—

(अ) अहिंसा

मांस अहारी मानवा
परतछ राच्छस अंग,
तिनकी संगति मत करो
परत भजन में भंग।
जोरि कर जिबहै करै,
कहते हैं ज हलाल,
जब दफतर देखैगा दई,
तब ह्वैगा कौन हवाल।

(आ) सत्य

सांई सेती चोरिया,
चोरां सेती गुझ,
जाणैगा रे जीवणा,
मार पड़ैगी तुझ।

(इ) अस्तेय

कबीर तहां न जाइये,
जहाँ कपट का हेत,
जालू कली कनीर की
तन राता मन सेत।

(ई) ब्रह्मचर्य

नर नारी सब नरक हैं,
जब लग देह सकाम,

---

[1] त्रयमेकत्र संयमः [पतंजलि योग-सूत्र ३—विभूतिपाद, सूत्र ४

कहै कबीर ते राम के,
जे सुमिरैं निहकाम।

(उ) अपरिग्रह

कबीर तष्टा टोकणी,
लीए फिरै सुभाइ,
राम नाम चीन्हैं नहीं,
पीतलि ही के चाइ।

कबीर ने आसन और प्राणायाम का महत्व प्रभावशाली शब्दों में बतलाया है। इसी के द्वारा उन्होंने यह समझाने का प्रयत्न किया है कि शरीर की शक्तियों को सुसंगठित कर उत्तेजित करने से परमात्मा से मिलन हो सकता है। यह बात दूसरी है कि उन्होंने धारण, ध्यान और समाधि पर विशेष नहीं कहा, पर उनके प्राणायाम से यह लक्षित अवश्य हो गया है कि ध्यान और समाधि ही के लिये प्राणायाम की आवश्यकता है। प्राणायाम के अभ्यास से प्राण-वायु के द्वारा शरीर में स्थित वायु-नाड़ियाँ और चक्र उत्तेजित होते हैं और उनमें शक्ति आती है। इन्हीं वायु-नाड़ियों और चक्रों में शक्ति का संचार होने से मनुष्य में यौगिक शक्तियाँ प्रादुर्भूत होती हैं। शिवसंहिता के अनुसार शरीर में ३,५०,००० नाड़ियाँ हैं। इनके बिना शरीर में प्राणायाम का कार्य नहीं हो सकता। दस नाड़ियाँ अधिक महत्व की हैं। वे ये हैं :—

१—इडा— (शरीर की बाईं ओर)
२—पिंगला— (,, दाहिनी ओर)
३—सुषुम्णा— (,, के मध्य में)
४—गंधारी— (बाईं आँख में)
५—हस्तजिह्वा— (दाहिनी आँख में)
६—पुष्प— (दाहिने कान में)
७—यशस्विनी— (बायें कान में)
८—अलमबुश— (मुख में)
९—कुहू— (लिंग स्थान में)
१०—शंखिनी— (मूल स्थान में)

इन दस नाड़ियों में तीन नाड़ियाँ मुख्य हैं। इडा, पिंगला और

सुषुम्णा। इडा मेरु-दंड (Spinal Column) की वाईं ओर है। वह सुषुम्णा से लिपटती हुई नाक की दाहिनी ओर जाती है।[1] पिंगला नाड़ी मेरु-दंड की दाहिनी ओर है। वह सुषुम्णा से लिपटती हुई नाक की वाईं ओर जाती है।[2] दोनों नाड़ियाँ समाप्त होने से पहिले एक दूसरे को पार कर लेती हैं। ये दोनों नाड़ियाँ मूलाधार चक्र (गुह्य स्थान के समीप—Plexus of Nerves) से आरंभ होती हैं और नाक में जाकर समाप्त होती हैं। ये दोनों नाड़ियाँ आधुनिक शरीर-विज्ञान में 'गैंग्लिएटेड कार्ड्स' (Gangliated Chords) के नाम से पुकारी जा सकती हैं।

तीसरी सुषुम्णा इडा और पिंगला के मध्य में है।[3] उसकी छः स्थितियाँ हैं, छः शक्तियाँ हैं, और उसमें छः कमल हैं। वह मेरु-दंड में से जाती है। वह नाभि-प्रदेश से उत्पन्न होकर मेरु-दंड से होती हुई ब्रह्म-चक्र में प्रवेश करती है। जब यह नाड़ी कंठ के समीप आती है तो दो भागों में विभाजित हो जाती है। एक भाग तो त्रिकुटी (दोनों भौंहों के मध्य स्थान) लोब अव् इंटैलिजेंस (Lobe of Intelligence) में पहुँच कर ब्रह्म-रंध्र से मिलता है और दूसरा भाग सिर के पीछे से होता हुआ ब्रह्म-रंध्र में आ मिलता है।[4] योग में इसी दूसरे भाग की शक्तियों की वृद्धि करना आवश्यक माना गया है! इन तीन नाड़ियों में सुषुम्णा बहुत महत्त्व-पूर्ण है क्योंकि इसी के द्वारा योगियों को सिद्धि प्राप्त होती है।

इस सुषुम्णा नाड़ी के निम्न मुख में कुंडलिनी (सर्पाकार दिव्यशक्ति)

---

[1] इडा नाम्नी तु या नाडी वाम मार्गे व्यवस्थिता
सुषुम्णायां समाश्लिष्य दक्ष नासापुटे गता...
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २५

[2] पिंगला नाम या नाडी दक्ष मार्गे व्यवस्थिता
मध्य नाडीं समाश्लिष्य वाम नासापुटे गता...
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २६

[3] इडा पिंगलयोर्मध्ये सुषुम्णा या भवेत्खलु
षट स्थानेषु च षट-शक्तिं षटपद्मं योगिनो विदुः...
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २७

[4] दि मिस्टीरियस कुंडलिनी (रेले) पृष्ठ ३६

निवास करती है।[1] जब कुंडलिनी प्राणायाम से जाग्रत हो जाती है। तो वह सुषुम्णा के सहारे आगे बढ़ती है। सुषुम्णा के भिन्न-भिन्न अंगों (चक्रों) से होती हुई और उनमें शक्ति डालती हुई वह कुंडलिनी ब्रह्म-रंध्र की ओर बढ़ती है। जैसे जैसे कुंडलिनी आगे बढ़ती है वैसे वैसे मन भी शक्तियाँ प्राप्त करता जाता है। अंत में जब यह कुंडलिनी सहस्र-दल कमल में पहुँचती है तो सारी यौगिक क्रियाएँ सिद्ध हो जाती हैं और योगी मन और शरीर से अलग हो जाता है। आत्मा पूर्ण स्वतंत्र हो जाती है।

सुषुम्णा की भिन्न भिन्न स्थितियाँ जिनमें से होकर कुंडलिनी आगे बढ़ती है, चक्रों के नाम से पुकारी जाती हैं सुषुम्णा में छः चक्र हैं।

सब से नीचे का चक्र बेसिक प्लेक्सस् (Basic Plexus) कहलाता है। यह मेरु-दंड के नीचे तथा गुह्य और लिंग के मध्य में रहता है।[2] इसमें चार दल होते हैं। इसका रंग पीला माना गया है और इसमें गणेश का रूप ही आराधना का साधन है। इसके चार दल अक्षरों के संयुक्त हैं— व श ष स। इस चक्र में एक त्रिकोण आकार है जिसमें कुंडलिनी, वेगस नर्व (Vagus Nerve) निवास करती है। उसका शरीर सर्प के समान साढ़े तीन बार मुड़ा हुआ है और वह अपने मुख में अपनी पूँछ दबाए हुए है। वह सुषुम्णा नाड़ी के छिद्र के समीप स्थित है।[3]

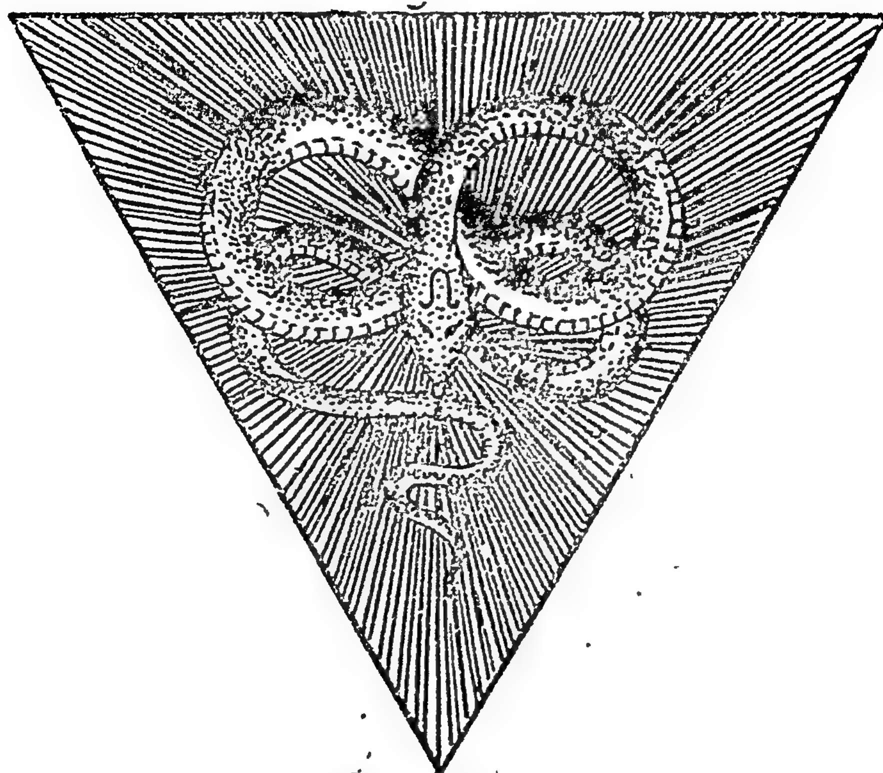
---

[1] तत्र विद्युल्लताकारा कुंडली पर देवता
साद्धत्रिकरा कुटिला सुषुम्णा मार्ग संस्थिता—
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २३

[2] गुदा द्व्यंगुलतश्चोर्ध्वं मेढ्रैकांगुलतस्त्वधः ।
एवंचास्ति समं कंदं समत्वाच्च तुरंगुलम्—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ५

[3] मुखे निवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णा विवरे स्थिता—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ५७

उसका रूप इस प्रकार है :—



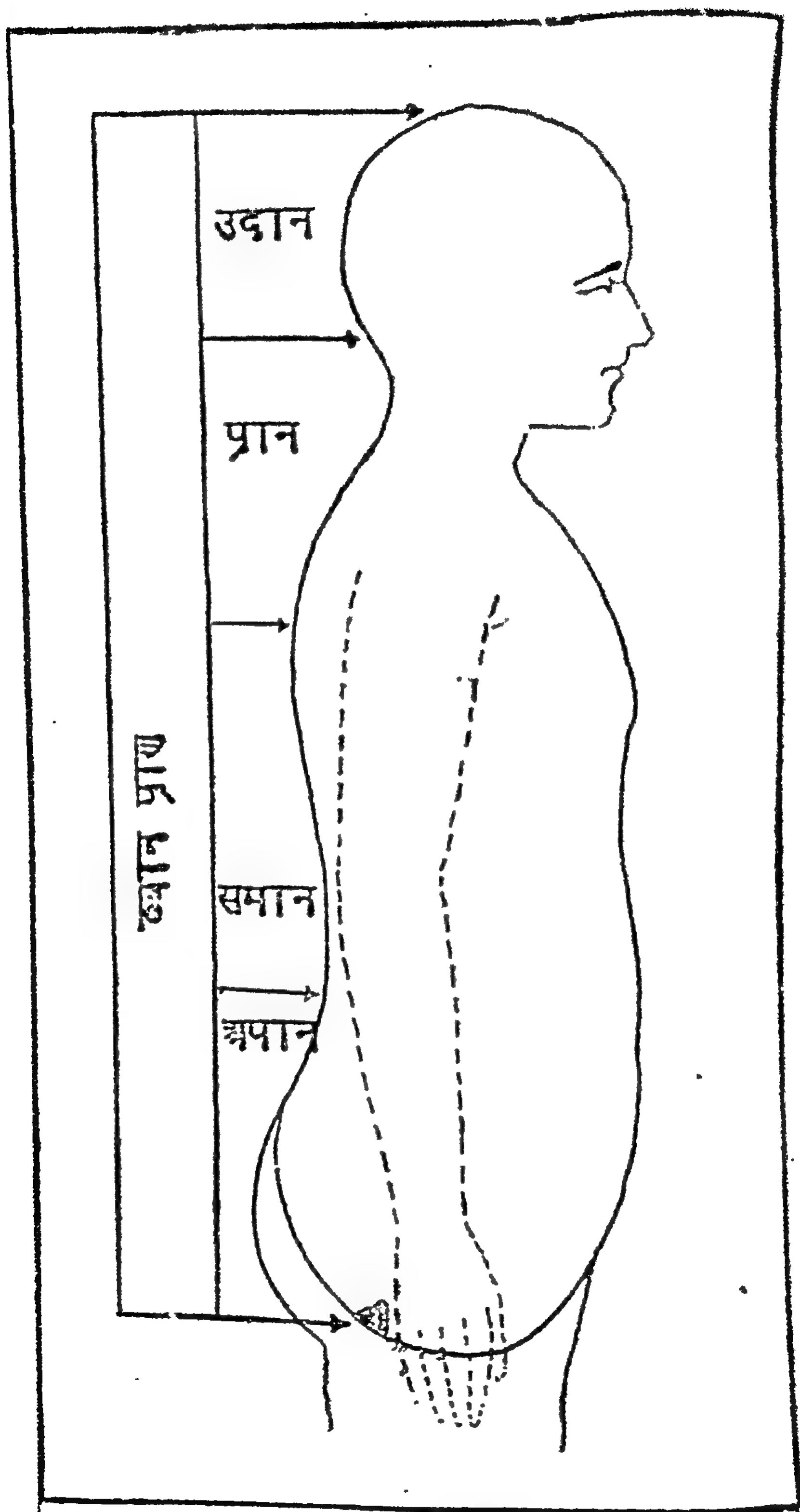
कुंडलिनी

कुंडलिनी, वेगस नर्व (Vagus Nerve) ही हठयोग में बड़ी शक्ति है। वह संसार की सृजन-शक्ति है।[1] वह वाग्देवी है जिसका शब्दों में वर्णन नहीं हो सकता। वह सर्प के समान सोती है और अपनी ही ज्योति से आलोकित है।[2] इस कुंडलिनी के जाग्रत होने की रीति समझने के पहले पंच-प्राण का ज्ञान आवश्यक है। यह प्राण एक प्रकार की शक्ति है जो शरीर में स्थित होकर हमारे शारीरिक कार्यों का संचालन करती है। इसे वायु भी कहते हैं। शरीर के भिन्न भिन्न भागों में स्थित होने के कारण इसके भिन्न भिन्न नाम

---

[1] जगत्संसृष्टि रूपा सा निर्माणे सततोद्यता
वाचाम वाच्या वाग्देवी सदा देवैर्नमस्कृता—
[शिवसंहिता, द्वितीय पटल, श्लोक २४

[2] सुप्ता नागोपमा ह्येषा स्फुरन्ती प्रभया स्वया...
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ५८



वायु निरूपण.

चित्र १

हो गए हैं। शरीर में दस वायु हैं। प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय।[1] इनमें से प्रथम पाँच मुख्य हैं। प्राण-वायु हृदय-प्रदेश का शासन करती है। अपान नाभि के नीचे के भागों में व्याप्त है समान नाभि-प्रदेश में है। उदान कंठ में है और व्यान सारे शरीर में प्रवाहित है। इसका रूप चित्र १ में देखिए।

योगी इन सब प्रकार की वायुओं को नाभि की जड़ से ऊपर उठाता है और प्राणायाम के द्वारा उन्हें साधता है। इन्हीं वायुओं की साधना कर सूर्यभेद-कुंभक प्राणायाम की विशिष्ट क्रिया द्वारा वह योगी मृत्यु का विनाश करता है और कुंडलिनी शक्ति को जाग्रत करता है।[2] इस प्रकार कुंडलिनी के जाग्रत करने के लिए इन पंच प्राणों के साधन की भी आवश्यकता है। कबीर ने इन वायुओं के संबंध में अनेक स्थानों पर लिखा है :—

तिन बिनु बाणै धनुष चढ़ाइयै
इहु जग बेध्या भाई,
दह दिसी बूड़ी पवन झुलावै
डोरि रही लिव लाई।
+ + +
पृथ्वी का गुण पानी सोष्या
पानी तेज मिलावहिंगे,।
तेज पवन मिलि, पवन सबद मिलि
ये कहि गालि तवावहिंगे।
+ + +
उलटी गंग नीर बहि आया
अमृत धार चुवाई,

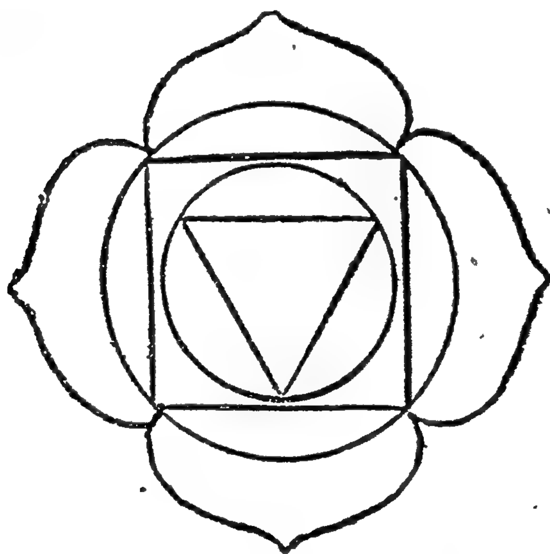
१प्राणोऽपानः समानश्चोदान व्यानौ तथैव च
नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः...
[घेरंडसंहिता, पंचम उपदेश, श्लोक ६०

२कुंभकः सूर्य भेदस्तु जरा मृत्यु विनाशकः
बोधयेत कुण्डलीं शक्तिं देहानलं विवर्धयेत्—
[घेरंडसंहिता, पंचम उपदेश, श्लोक ६८

पाँच जने सो सँग कर लीन्हें
चलत खुमारी लागी।

+ + +

मूलाधार चक्र पर मनन करने से उस ज्ञानी पुरुष को दरदुरी सिद्धि (मेढक के समान उछलने की शक्ति) प्राप्त होती है और शनैः शनैः वह पृथ्वी को संपूर्णतः छोड़ कर आका में उड़ सकता है।[१] शरीर का तेज उत्कृष्ट होता है, जठराग्नि बढ़ती है, शरीर रोग-मुक्त हो जाता है, बुद्धि और सर्वज्ञता आती है। वह कारणों के सहित भूत, वर्तमान और भविष्य जान जाता है। वह न सुनी गई विद्याओं को उनके रहस्यों सहित जान जाता है। उसकी जीभ पर सदैव सरस्वती नाचती है। वह जपने-मात्र से मंत्र-सिद्धि प्राप्त कर लेता है। वह जरा, मृत्यु और अगणित कष्टों को नष्ट कर देता है। उस चक्र का रूप इस प्रकार है:—



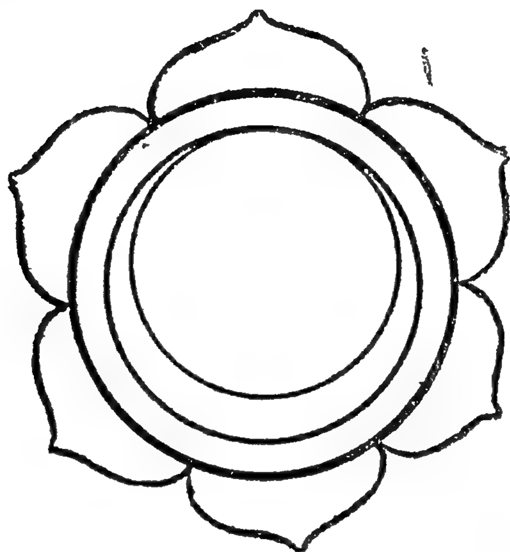
मूलाधार चक्र

---

१ यःकरोति सदा ध्यानं मूलाधारे विचक्षणः
तस्य स्याद्दर्दुरी सिद्धिर्भूमि त्यागक्रमेण वै—
[शिवसंहिता, पंचम पटल के ६४, ६५, ६६, ६७ श्लोक

(२) स्वाधिष्ठान चक्र

यह चक्र लिंगमूल में स्थित है।[1] शरीर-विज्ञान के अनुसार इसे हाइपोगास्ट्रिक प्लेक्सस (Hypogastric Plexus) कह सकते हैं।



स्वाधिष्ठान चक्र

इसमें छः दल होते हैं। इसके संकेताक्षर हैं ब, भ, म, य, र, ल। इसका नाम स्वाधिष्ठान चक्र है। यह चक्र रक्त वर्ण है। जो इस चक्र पर चिंतन करता है, उसे सभी सुन्दर देवांगनाएँ प्यार करती हैं। वह विश्व भर में बंधन मुक्त और भय रहित होकर घूमता है। वह अणिमा और लघिमा सिद्धियों का स्वामी बन मृत्यु जीत लेता है।

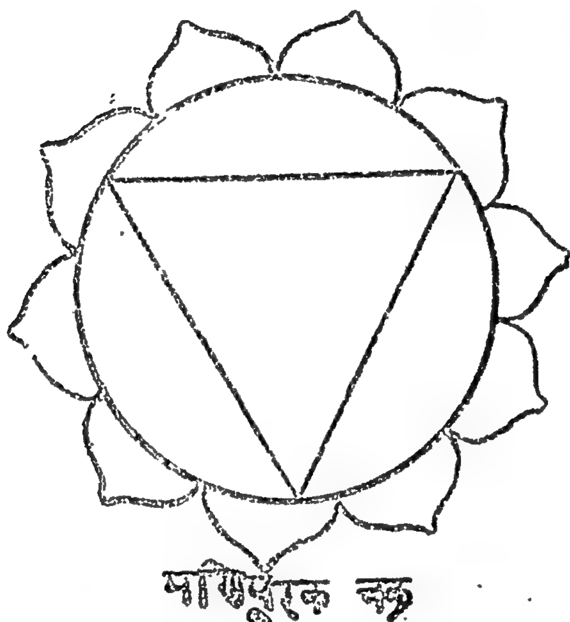
(३) मणिपूरक चक्र

यह चक्र नाभि के समीप स्थित है। यह सुनहले रंग का है, इसके दस दल हैं। इसके दलों के संकेताक्षर हैं ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ।

---

१ द्वितीयन्तु सरोजंच लिंगमूले व्यवस्थितम्
बादिलांतं च षड्वर्णं परिभास्वर षड्दलम्—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ७९

इसे शरीर-विज्ञान के अनुसार कदाचित् सोलर प्लेक्सस (Solar Plexus) कहते हैं। इस चक्र[1] पर चिंतन करने से योगी पाताल (सदा सुख देने वाली) सिद्धि प्राप्त करता है। वह इच्छाओं का स्वामी, रोग और दुःख का



मणिपूरक चक्र

नाशकर्त्ता हो जाता है। वह दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकता है। वह स्वर्ण बना सकता है और छिपा हुआ ख़ज़ाना भी देख सकता है।

(४) अनाहत चक्र

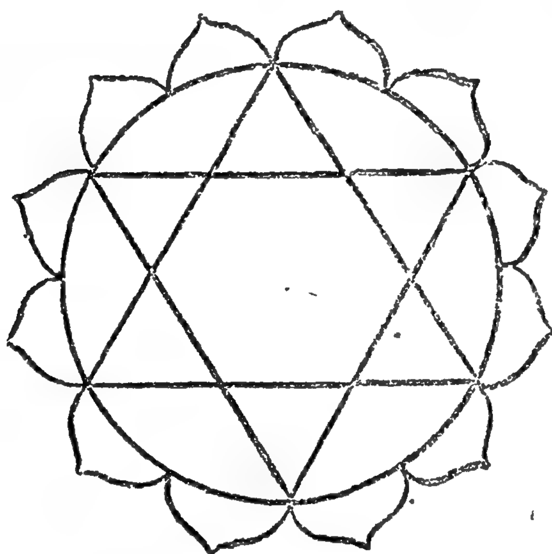
यह चक्र हृदय-स्थल में रहता है।[2] इसके बारह दल होते हैं। इसके संकेताक्षर हैं, क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ। यह रक्त-

---

[1] तृतियं पंकजं नाभौ मणिपूरक संज्ञकम्
दशारं डाफिकांतार्णं शोभितं हेमवर्णकम्।
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ७९

[2] हृदयेऽनाहतं नाम चतुर्थं पंकजं भवेत्।
कादिठांतार्थं संस्थानं द्वादशारसमन्वितम्।
अतिशोणं वायु बीजं प्रसादस्थानमीरितम्॥
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ८२

वर्ण है। शरीर-विज्ञान के अनुसार यह कारडियक प्लेक्सस (Cardiac Plexus) कहा जा सकता है। जो इस चक्र पर चिंतन करता है वह अपरिमित ज्ञान प्राप्त करता है। भूत, भविष्य और वर्त्तमान जानता है। वह वायु में चल सकता है, उसे खेचरी शक्ति (आकाश में जाने की शक्ति) मिल जाती है। इस चक्र का रूप इस प्रकार है :—



अनाहत चक्र

कबीर इस चक्र के विषय में कहते हैं :—

द्वादस दल अभिअंतर म्यंत,
तहाँ प्रभु पाइसि कर लै च्यंत।
अमिलन मलिन घरम नहीं छाहां,
दिवस न राति नहीं है ताहाँ।

शब्द २२८

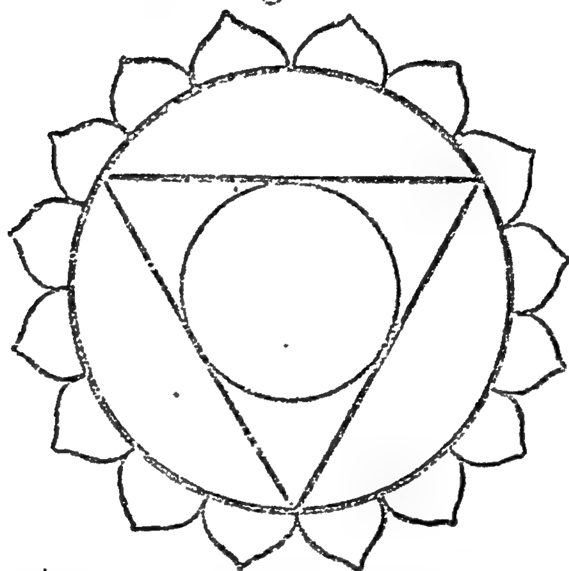
(५) विशुद्ध चक्र

यह चक्र कंठ में स्थित है।[१] इसका रंग देदीप्यमान स्वर्ण की भाँति

---

१ कंठस्थानस्थितं पद्मं विशुद्धं नामपंचमम्।
सुहेमाभं स्वरोपेतं षोडशस्वर संयुतम्॥
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक १०

है। इसमें १६ दल हैं, यह स्वर-ध्वनि का स्थान है। इसके संकेताक्षर हैं अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः। शरीर-विज्ञान के अनुसार इसे फैरिंगील प्लेक्सस (Pharyngeal Plexus) कह सकते हैं। जो इस चक्र पर चिंतन करता है वह वास्तव में योगेश्वर हो



विशुद्ध चक्र

जाता है। वह चारों वेदों को उनके रहस्यों के साथ समझ सकता है। जब योगी इस स्थान पर अपना मन केंद्रित कर क्रुद्ध होता है तो तीनों लोक काँप उठते हैं। वह इस चक्र पर ध्यान करते ही बहिर्जगत का परित्याग कर अंतर्जगत में रमने लगता है। उसका शरीर कभी निर्बल नहीं होता और वह १,००० वर्ष तक शक्ति-सहित जीवन व्यतीत करता है।

(६) आज्ञा चक्र

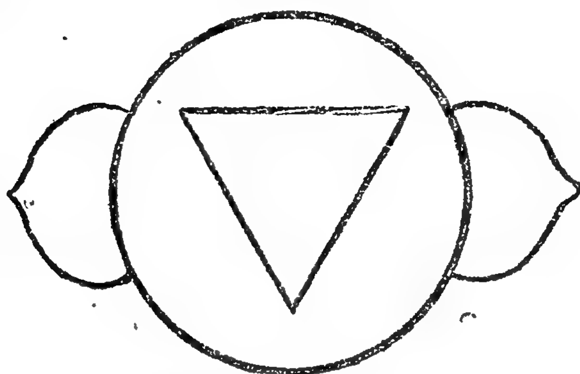
यह चक्र त्रिकुटी (भौंहों के मध्य) में स्थित है।[1] इसमें दो दल हैं, इसका रंग श्वेत है, संकेताक्षर ह और क्ष हैं। शरीर-विज्ञान के अनुसार इसे केवरनस प्लेक्सस (Cavernous Plexus) कह सकते हैं। यह

---

[1] आज्ञापद्मं भ्रुवोर्मध्ये हक्षोपेतं द्विपत्रकम्
शुक्लाभं त महाकालः सिद्धो देव्यत्र हाकिनी—

[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ९६

प्रकाश-बीज है; इस पर चिंतन करने से ऊँची से ऊँची सफलता मिलती है।[1]



आज्ञा चक्र

इसके दोनों ओर इडा और पिंगला हैं वही मानो क्रमशः वरणा और असी हैं और यह स्थान वाराणसी है। यहाँ विश्वनाथ का वास है।

कुण्डलिनी सुषुम्णा के इन छः चक्रों में से होती हुई ब्रह्म-रंध्र पहुँचती है वहाँ सहस्र-दल कमल है, उसके मध्य में एक चंद्र है। उस त्रिकोण भाग से जहाँ चंद्र है, सदैव सुधा बहती है। वह सुधा इडा नाड़ी द्वारा प्रवाहित होती है। जो योगी नहीं है, उनके ब्रह्म-रंध्र से जो अमृत प्रवाहित होता है उसका शोषण मूलाधार चक्र में स्थित सूर्य द्वारा[2] हो जाता है और इस प्रकार वह नष्ट हो जाता है। इससे शरीर वृद्ध होने लगता है। यदि साधक इस प्रवाह को किसी प्रकार रोक दे और सूर्य से शोषण न होने दे तो उस सुधा को वह अपने शरीर की शक्तियों की वृद्धि करने में लगा सकता है। उस सुधा के उपयोग से वह अपना सारा शरीर जीवन की शक्तियों से भर लेगा और यदि उसे तक्षक सर्प भी काट ले तो उसके सर्वांग में विष नहीं फैल सकता।[3]

---

[1]एतदेव परं तेजः सर्वतन्त्रेषु मान्त्रिणः।
चिन्तयित्वा सिद्धिं लभते नात्र संशयः।
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक ६८

[2]मूलधारे हि यत्पद्मं चतुष्पत्रं व्यवस्थितम्।
तत्र मध्यहि या योनिस्तस्यां सूर्यो व्यवस्थितः।
[शिवसंहिता, पंचम पटल; श्लोक १०६

[3]हठयोग प्रदीपिका पृष्ठ ५३

सहस्र-दल कमल तालु-मूल में स्थित है।[1] वहीं पर सुषुम्णा का छिद्र है। यही ब्रह्म-रंध्र कहलाता है। तालु-मूल से सुषुम्णा का नीचे की ओर विस्तार है।[2] अंत में वह मूलाधार चक्र में पहुँचती है। वहीं से कुंडलिनी जाग्रत होकर सुषुम्णा में ऊपर बढ़ती है और अंत में ब्रह्म-रंध्र में पहुँचती है। ब्रह्म-रंध्र में ब्रह्म की स्थिति है जिसका ज्ञान योगी सदैव प्राप्त करना चाहता है। इस रंध्र में छः दरवाजे हैं जिन्हें कुंडलिनी ही खोल सकती है। इस रंध्र का रूप विंदु (०) रूप है। इसी स्थान पर 'प्राण-शक्ति' संचित की जाती है। प्राणायाम की उत्कृष्ट स्थिति में इसी विंदु में आत्मा ले जाई जाती है। इसी विंदु में आत्मा शरीर से स्वतंत्र होकर 'सोऽहं' का अनुभव करती है। मनुष्य के शरीर में षट्चक्रों का निरूपण चित्र २ में देखिए।

कबीर ने अपने शब्दों में इन चक्रों का वर्णन विस्तार से तो नहीं किंतु साधारण रूप से किया है। उदाहरणार्थ एक पद लीजिए :—

(ब्रह्म-रंध्र के विंदु रूप पर)

ब्रह्म अगनि मैं काया जारै,
त्रिकुटी संगम जागै,
कहै कबीर सोई जोगेस्वर
सहज सुन्न ल्यो लागै।

कबीर ग्रंथावली, शब्द ६९

सहज सुन्न इक बिरवा उपजा
धरती जलहर सोख्या,
कहि कबीर हौं ताका सेवक
जिन यहु बिरवा देख्या।

शब्द १०८

जन्म मरन का भय गया,
गोविन्द लव लागी,

---

[1] अत उर्ध्वं तालुमूले सहस्रारं सरोरुहम्
अस्ति यत्र सुषुम्णाया मूलं सविवरं स्थितम्—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक १२०

[2] तालुमूले सुषुम्णा सा अधोवक्त्रा प्रवर्तते—
[शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक १२१

जीवत सुन्न समानिया,
गुरु साखी जागी।

शब्द ७३

रे मन बैठि कितै जिन जासी।
उलटि पवन षट चक्र निवासी,
तीरथ राज गंग तट वासी।
गगन मंडल रवि ससि दोइ तारा,
उलटी कूँची लाग किवारा।
कहै कबीर भया उजियारा,
पंच मारि एक रह्यो निनारा।

प्राणायाम की साधना की सफलता धारणा, ध्यान और समाधि के रूप में पहिचान कर कबीर ने उनका एक साथ ही वर्णन कर दिया है। हम कबीर को योग-शास्त्र का पूर्ण पंडित उनके केवल सत्संग-ज्ञान से नहीं मान सकते। धारणा, ध्यान और समाधि का संमिश्रण हम उनके रेख़्तों में व्यापक रूप से पाते हैं। न तो उन्होंने धारणा का ही स्वरूप निर्धारित किया है और न ध्यान एवं समाधि ही का। तीनों की 'त्रिबेनी' उन्होंने एक साथ ही प्रवाहित कर दी है। इस स्थल को समझने के लिये उनके वे रेख़ते जिनमें उन्होंने प्राणायाम के साथ धारणा, ध्यान और समाधि का वर्णन किया है उद्धृत करना अयुक्तिसंगत न होगा।

देख वोजूद में अजब बिसराम है
होय मौजूद तो सही पावै,
फेरि मन पवन को घेरि उलटा चढ़े
पांच पच्चीस को उलटि लावै।
सुरत का डोर सुख सिंध का झूलना
घोर की सोर तहँ नाद गावै,
नीर बिन कंवल तह देखि अति फूलिया
कहै कब्बीर मन भँवर छावै।
चक्र के बीच में कंवल अति फूलिया
तासु का सुक्ख कोई संत जानै,
कुलुफ़ नौ द्वार औ पवन का रोकना
तिरकुटी मद्ध मन भँवर आनै,

सब्द की घोर चहूँ ओर ही होत है
अधर दरियाव को सुक्ख मानै,
कहै कब्बीर यों मूल सुख सिंध में
जन्म और मरन का भर्म भानै।
गंग और जमुन के घाट को खोजि ले
भँवर गुंजार तहँ करत भाई,
सरसुती नीर तह देखु निर्मल बहै
तासु के नीर पिये प्यास जाई,
पांच की प्यास तहं देखि पूरी भई
तीन ताप तहँ लगे नाहीं,
कहै कब्बीर यह अगम का खेल है
गैब का चांदना देख माँही।
गड़ा निस्सान तहँ सुन्न के बीच में
उलटि के सुरत फिर नहिँ आवै,
दूध को मत्थ करि घिर्त न्यारा किया
बहुरि फिर तत्त में ना समावै,
साड़ि मत्थान तहँ पाँच उलटा किया
नाम नौनीति लै सुक्ख फेरी,
कहै कब्बीर यों सन्त निर्भय हुआ
जन्म और मरन की मिटी फेरी।

सूफ़ीमत और कबीर

रहस्यवाद का अंतिम लक्ष्य है आत्मा और परमात्मा का मिलन।

इस मिलन में एक बात आवश्यक है। वह आत्मा की पवित्रता है। यदि आत्मा में ईश्वर से मिलने की उत्कृष्ट आकांक्षा होने पर भी पवित्रता नहीं है तो परमात्मा का मिलन नहीं हो सकता। आत्मा की सारी आकांक्षा घनीभूत होकर पवित्रता की समता नहीं कर सकती। पवित्रता में जो शक्ति है वह आकांक्षा में कहाँ? आकांक्षा न होने पर भी पवित्रता दैवी गुणों का आविर्भाव कर सकती है। उसमें आध्यात्मिक तत्व की वे शक्तियाँ अंतर्हित हैं जिनसे ईश्वर की अनुभूति सहज ही में हो सकती है। यह पवित्रता उन विचारों से बनती है जिनमें वासना, छल, कुरुचि और अस्तेय का बहिष्कार है। वासना का कलुषित व्यभिचार हृदय को मलीन न होने दे। छल का व्यवहार मन के विचारों को विकृत न होने दे। कुरुचि का जघन्य पाप हृदय की प्रवृत्तियों को बुरे मार्ग पर न ले जाय और अस्तेय का आतंक हृदय में दोषों का समुदाय एकत्रित न कर दे! इन दोषों के आतंक से निकल कर जब आत्मा अपनी प्राकृतिक क्रिया करती हुई जीवन के अंग प्रत्यंग में प्रकाशित होती है तो उसका वह आलोक पवित्रता के नाम से पुकारा जाता है। यह पवित्रता ईश्वरीय मिलन के लिए आवश्यक सामग्री है। जलालुद्दीन रूमी ने यही बात अपनी मसनवी के ३४६०वें पद्य में लिखी है, जिसका भावार्थ यह है कि 'अपने अहम् की विशेषताओं से दूर रह कर पवित्र बन, जिससे तू अपना मैल से रहित उज्ज्वल तत्व देख सके।'

यह पवित्रता केवल बाह्य न हो आंतरिक भी होनी चाहिए। स्नान कर चंदन-तिलक लगाना पवित्रता का लक्षण नहीं है। पवित्रता का लक्षण है हृदय की निष्कपट और निरीह भावना। उसी पवित्रता से ईश्वर प्रसन्न होता है। तभी तो कबीर ने कहा :—

कहा भयो रचि स्वाँग बनायो,
अंतरजामी निकट न आयो।
कहा भयो तिलक गरैं जपमाला,
मरम न जानें मिलन गोपाला।

दिन प्रति पसू करै हरिहाई,
गरै काठ वाकी बांन न आई।
स्वाँग सेत करणीं मनि काली,
कहा भयो गलि माला घाली।
बिन ही प्रेम कहा भयो रोए,
भीतरि मैलि बाहरि कहा धोए।
गलगल स्वाद भगति नहीं धीर,
चीकन चँदवा कहै कबीर।

सारी वासनाओं को दूर कर हृदय को शुद्ध कर लो, यही परमात्मा से मिलन का मार्ग है! उसी पवित्र स्थान में परमात्मा निवास करता है जो दर्पण के समान स्वच्छ और पवित्र है, कु-वासनाओं की कालिमा से दूर है। रूमी ने ३४५९वें पद्य में कहा है:—'साफ़ किये हुए लोहे की भाँति जंग के रंग को छोड़ दे, अपने तापस-नियोग से जंग-रहित दर्पण बन।' इसी विषय की विवेचना में उसने चित्र-कला के संबंध में ग्रीस और चीन वालों के वाद-विवाद की एक मनोरंजक कहानी भी दी है, उसे यहाँ लिख देना अनुपयुक्त न होगा।

चित्रकला में ग्रीस और चीनवालों के वाद-विवाद की कहानी

चीनवालों ने कहा—"हम लोग अच्छे कलाकार हैं।" ग्रीस वालों ने कहा—"हम लोगों में अधिक उत्कृष्टता और शक्ति है।"

३४६८, सुलतान ने कहा—"इस विषय में मैं तुम दोनों की परीक्षा लूंगा। और तब यह देखूँगा कि तुममें से कौन अधिकार में सच्चा उतरता है।"

३४६९, चीन और ग्रीसवाले वागयुद्ध करने लगे, ग्रीसवाले विवाद से हट गये।

३४७०, तब चीनियों ने कहा—"हमें कोई कमरा दे दीजिये और आप लोग भी अपने लिए एक कमरा ले लीजिये।"

३४७१, दो कमरे थे जिनके द्वार एक दूसरे के संमुख थे। चीनियों ने एक कमरा ले लिया, ग्रीसवालों ने दूसरा।

३४७२, चीनियों ने राजा से विनय की, उन्हें सौ रंग दे दिये जायँ। राजा ने अपना खज़ाना खोल दिया कि वे (अपनी इच्छित वस्तुएँ) पा जायँ।

३४७३, प्रत्येक प्रातः राजा की उदारता से, ख़ज़ाने की ओर से चीनियों को रंग दे दिये जाते।

३४७४, ग्रीसवालों ने कहा—"हमारे काम के लिये कोई रंग की आवश्यकता नहीं, केवल जंग छुड़ाने की आवश्यकता है।"

३४७५, उन्होंने दरवाज़ा बंद कर लिया और साफ़ करने में लग गए वे (वस्तुएं) आकाश की भाँति स्वच्छ और पवित्र हो गईं।

३४७६, अनेक रंगता की शून्य की ओर गति है, रंग बादलों की भाँति है और शून्य रंग चंद्र की भाँति।

३४७७, तुम बादलों में जो प्रकाश और वैभव देखते हो, उसे समझ लो कि वह तारों, चंद्र और सूर्य से आता है।

३४७८, जब चीन वालों ने अपना काम समाप्त कर दिया, वे अपनी प्रसन्नता की दुंदुभी बजाने लगे।

३४७९, राजा आया और उसने वहाँ के चित्र देखे। जो दृश्य उसने वहाँ देखा, उससे वह अवाक् रह गया।

३४८०, उसके बाद वह ग्रीसवालों की ओर गया, उन्होंने बीच का परदा हटा दिया है।

३४८१, चीनवालों के चित्रों का और उनके कला-कार्यों का प्रतिबिंब इन दीवारों पर पड़ा जो जग से रहित कर उज्ज्वल बना दी गई थीं।

३४८२, जो कुछ उसने वहाँ (चीनवालों के कमरे में) देखा था, यहाँ और भी सुन्दर जान पड़ा। मानों आँख अपने स्थान से छीनी जा रही थी।

३४८३, ग्रीसवाले, ओ पिता! सूफ़ी हैं। वे अध्ययन, पुस्तक और ज्ञान से रहित (स्वतंत्र) हैं।

३४८४, किन्तु उन्होंने अपने हृदय को उज्ज्वल बना लिया है और उसे लोभ, काम, लालच और घृणा से रहित कर पवित्र बना लिया है।

३४८५, दर्पण की वह स्वच्छता ही निस्संदेह हृदय है, जो अगणित चित्रों को ग्रहण करता है।

इस प्रकार आत्मा के पवित्र हो जाने पर उसमें परमात्मा के मिलने की क्षमता आ जाती है।

आध्यात्मिक यात्रा के प्रारंभ में यद्यपि आत्मा परमात्मा से अलग रहती है, पर जैसे जैसे आत्मा पवित्र बन कर ईश्वर से मिलने की आकांक्षा में

निमग्न होने लगती है वैसे वैसे उसमें ईश्वरीय विभूतियों के लक्षण स्पष्ट दीख लगते हैं। जब आत्मा परमात्मा के पास पहुँचती है तो उस दिव्य संयोग में वह स्वयं परमात्मा का रूप रख लेती है। रूमी ने अपनी मसनवी के १५३१वें और उसके आगे के पद्यों में लिखा है—

जब लहर समुद्र में पहुँची, वह समुद्र बन गई। जब बीज खेत में पहुँचा वह शस्य बन गया।

जब रोटी जीवधारी (मनुष्य) के संपर्क में आई तो मृत रोटी जीवन और ज्ञान से परिप्रोत हो गई।

जब मोम और ईंधन आग को समर्पित किये गए तो उनका अंधकार मय अन्तर-तम भाग जाज्वल्यमान हो गया।

जब सुरमे का पत्थर भस्मीभूत हो नेत्र में गया तो वह दृष्टि में परिवर्तित हो गया और वहाँ वह निरीक्षक हो गया।

ओह, वह मनुष्य कितना सुखी है जो अपने से स्वतंत्र हो गया है और एक सजीव के अस्तित्व में संमिलित हो गया है।

कबीर ने इसी विचार को बहुत परिष्कृत रूप में रक्खा है। वे यह नहीं कहते कि जब लहर समुद्र में पहुँची तो समुद्र बन गई, पर वे यह कहते हैं कि हम इस प्रकार दिखेंगे जैसे तरंगिनी की तरंग, जो उसी में उत्पन्न होकर उसी में मिलती है। रूमी तो कहता है कि जब तरंग समुद्र में पहुँची तब वह समुद्र बनी। पहिले वह समुद्र अथवा समुद्र का भाग नहीं थी। कबीर का कथन है कि तरंग तो सदैव तरंगिनी में ही वर्त्तमान है। उसी में उठती और उसी में गिरती है—

जैसे जलहि तरंग तरंगिनी,
ऐसे हम दिखलावहिंगे।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर,
हंसहि हंस मिलावहिंगे॥

ऐसी स्थिति में संसार के बीच आत्मा ही परमात्मा का स्वरूप ग्रहण करती है। आत्मा की सेवा मानों परमात्मा की सेवा है और आत्मा का स्पर्श मानों परमात्मा का स्पर्श है। आत्मा संसार में उसी प्रकार रहती है जिस प्रकार परमात्मा की विभूति संसार के अंग-प्रत्यंग में निवास करती रहती है। आत्मा में एक प्रकार की शक्ति आ जाती है जिसके द्वारा वह मनुष्यता को

भूल कर विश्व की बृहत् परिधि में विचरण करने लगती है। वह मनुष्यता को पाप के कलुषित आतंक से बचाती है, पाप का निवारण करने लगती है और जो व्यक्ति ईश्वर विमुख है अथवा धार्मिक पथ के प्रतिकूल है उसे सदैव सहारा देकर उन्नति की ओर अग्रसर करती है। वह आत्मा जो ईश्वर के आलोक से आलोकित है, अन्य आत्माओं की अंधकारमयी रजनी में प्रकाश ज्योति बन कर पथ-प्रदर्शन करती है। उसमें फिर यह शक्ति आ जाती है कि वह संसार के भौतिक साधनों की नश्वरता को समझ कर आध्यात्मिक साधनों का महत्व लोगों के सामने रूपकों की भाषा में रखने लगे। उसी समय आत्मा लोगों के सामने उच्च स्वर में कह सकती है कि मैं परमात्मा हूँ। मेरे ही द्वारा अस्तित्व का तत्व पृथ्वी पर वर्तमान है, यही रहस्यवाद की उत्कृष्ट सफलता है।

आत्मा के ईश्वरत्व की इस स्थिति को जलालुद्दीन रूमी ने अपनी मसनवी में एक कहानी का रूप दिया है। वह इस प्रकार है:—

ईश्वरत्व

शेख़ बायज़ीद हज्ज (बड़ी तीर्थ-यात्रा) और उमरा (छोटी तीर्थ-यात्रा के लिये मक्का जा रहा था।

जिस जिस नगर में वह जाता वहाँ पहिले वह महात्माओं की खोज करता।

—वह यहाँ-वहाँ घूमता और पूछता, शहर में ऐसा कौन है जो (दिव्य) अंतर्दृष्टि पर आश्रित है?

—ईश्वर ने कहा है—अपनी यात्रा में जहाँ कहीं तू जा, पहिले तू महात्मा की खोज अवश्य कर। ख़ज़ाने की खोज में जा क्योंकि सांसारिक लाभ और हानि का नंबर दूसरा है। उन्हें केवल शाखाएँ समझ, जड़ नहीं।

उसने एक वृद्ध देखा जो नये चंद्र की भाँति झुका हुआ था; उसने उस मनुष्य में महात्मा का महत्त्व और गौरव देखा।

—उसकी आँखों में ज्योति नहीं थी, उसका हृदय सूर्य के समान जगमगा रहा था जैसे वह एक हाथी हो जो हिंदुस्तान का स्वप्न देख रहा हो।

—आँखें बंद कर सुषुप्त बन वह सैकड़ों उल्लास देखता है। जब वह आँखें खोलता है, तो उन उल्लासों को नहीं देखता। ओह, कितना आश्चर्य है!

—नींद में न जाने कितने आश्चर्य-जनक-व्यापार दृष्टिगत होते हैं, नींद में हृदय एक खिड़की बन जाता है।

—जो जागता है और सुंदर स्वप्न देखता है वह ईश्वर को जानता है। उसके चरणों की धूल अपनी आँखों में लगाओ।

—वह बायज़ीद उसके सामने बैठ गया और उसने उसकी दशा के विषय में पूछा, उसने उसे साधू और गृहस्थ दोनों पाया।

उसने (वृद्ध मनुष्य ने) कहा—ओ बायज़ीद, तू कहाँ जा रहा है? अपरिचित प्रदेश में किस स्थान पर अपनी यात्रा का सामान ले जा रहा है?

—बायज़ीद ने कहा—प्रातः मैं काबा के लिये रवाना हो रहा हूँ "ये" दूसरे ने कहा—"रास्ते के लिए तेरे पास क्या सामान है?"

—"मेरे पास दो सौ चाँदी के दिरहम हैं" उसने कहा "देखो वे मेरे अँगरखे के कोने में बँधे हैं।"

—उसने कहा—"सात बार मेरी परिक्रमा कर ले और इसे अपनी तीर्थ-यात्रा काबे की परिक्रमा से अच्छा समझ।"

—"और वे दिरहम मेरे सामने रख दे, ऐ उदार सज्जन! समझ ले कि तूने काबा से अच्छी तीर्थ-यात्रा कर ली है और तेरी इच्छाओं की पूर्ति हो गई है।"

—"और तूने छोटी तीर्थ-यात्रा भी कर ली, अनंत जीवन की प्राप्ति कर ली। अब तू साफ हो गया।"

—"सत्य (ईश्वर) के सत्य से, जिसे तेरी आत्मा ने देख लिया है, मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि उसने अपने अधिवास से भी ऊपर मुझे चुन रखा है।"

—"यद्यपि काबा उसके धार्मिक कर्मों का स्थान है, मेरा यह आकार भी जिसमें मैं उत्पन्न किया गया था, उसके अंतरतम चित् का स्थान है।"

"जब से ईश्वर ने काबा बनाया है वह वहाँ नहीं गया और मेरे इस मकान में चित् (ईश्वर) के अतिरिक्त कोई कभी नहीं गया।"

—"जब तूने मुझे देख लिया, तो तूने ईश्वर को देख लिया। तूने पवित्रता के काबा की परिक्रमा कर ली है।"

—"मेरी सेवा करना, ईश्वर की आज्ञा मान कर उसकी कीर्ति बढ़ाना है ख़बरदार, तू यह मत समझना कि ईश्वर मुझसे अलग है।"

—"अपनी आँख अच्छी तरह से खोल और मेरी ओर देख, जिससे तू मनुष्य में ईश्वर का प्रकाश देखे।"

बायज़ीद ने इन आध्यात्मिक वचनों की ओर ध्यान दिया। अपने कानों में स्वर्ण-बालियों की भाँति उन्हें स्थान दिया।

कबीर ने इसी भावना को निम्नलिखित पद्य में व्यक्त किया है :—

हम सब माँहि सकल हम माँही,
हम थैं और दूसरा नाहीं।
तीन लोक में हमारा पसारा,
आवागमन सब खेल हमारा।
खट दरशन कहियत हम भेखा,
हमही अतीत रूप नहीं रेखा।
हम ही आप कबीर कहावा,
हमही अपना आप लखावा।

जब आत्मा परमात्मा की सत्ता में इस प्रकार लीन हो जाती है तब उसमें एक प्रकार का मतवालापन आ जाता है। वह ईश्वर के नशे में चूर हो जाती है। संसार के साधारण मनुष्य जो उस मतवालेपन को नहीं जानते उसकी हँसी उड़ाते हैं। वे उसे पागल समझते हैं। वे क्या जानें उसे मस्त बना देने वाले आध्यात्मिक मदिरा के नशे को, जिसमें संसार को भुला देने की शक्ति होती है। रूमी ने ३४२६ वें और उसके आगे के पद्यों में लिखा है:—

जब मतवाला व्यक्ति मदिरालय से दूर चला जाता है, वह बच्चों के हास्य और कौतुक की सामग्री बन जाता है। जिस रास्ते वह जाता है, कीचड़ में गिर पड़ता है, कभी इस ओर कभी उस ओर। प्रत्येक मूर्ख उस पर हँसता है। वह इस प्रकार चला जाता है और उसके पीछे चलने वाले बच्चे उस मतवालेपन को नहीं जानते और नहीं जानते उसकी मदिरा के स्वाद को।

सभी मनुष्य बच्चों के समान हैं, केवल वही नहीं है जो ईश्वर के पीछे मतवाला है। जो वासनामयी प्रवृत्ति से स्वतंत्र है, उसे छोड़ कर कोई भी बड़ा नहीं है।

इस मतवालेपन का वर्णन कबीर ने भी शक्तिशाली रेख़ते में किया है। वह इस प्रकार है :—

छका अवधूत मस्तान माता रहै,
ज्ञान वैराग सुधि लिया पूरा,
स्वास उस्वास का प्रेम प्याला पिया
गगन गरजै तहां बजै तूरा।
पीठ संसार से नाम राता रहै
जातन जरना लिया सदा खेलै,
कहै कब्बीर गुरु पीर से सुरखरू
परम सुख धाम तहं प्रान मेलै।

इस ख़ुमार को वे लोग किस प्रकार समझ सकेंगे जिन्होंने "इश्क़ हक़ीक़ी" की शराब ही नहीं पी।

अनंत संयोग

(अवशेष)

इस प्रकार आत्मा और परमात्मा का संयोग हो जाता है। आत्मा बढ़ कर अपने को परमात्मा तक खींच ले जाती है। जरसन ने तो इसी के सहारे रहस्यवादी की मीमांसा की थी। उन्होंने कहा था—'रहस्यवादी की अभिव्यक्ति उसी समय होती है जब आत्मा प्रेम की अमूल्य निधि लिए हुए परमात्मा में अपना विस्तार करती है। पवित्र और उमङ्ग भरे प्रेम से परि-चालित आत्मा का परमात्मा में गमन ही तो रहस्यवाद कहलाता है।' डायोनिसस एक क़दम आगे बढ़ कर कहते हैं :—परमात्मा से आत्मा का अत्यंत गुप्त वाग्-विलास ही रहस्यवाद है।[1] डायोनिसस ने आत्मा को परमात्मा तक जाने का कष्ट ही नहीं दिया। उन्होंने केवल खड़े खड़े ही आत्मा और परमात्मा में बात चीत करा दी।

इसी प्रकार रहस्यवाद की अन्य विलक्षण परिभाषाएँ हैं, जिनसे हम जान सकते हैं कि रहस्यवाद की अनुभूति भिन्न प्रकार से विविध रहस्यवादियों के हृदय में हुई है।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने तो आत्मा और परमात्मा के मिलन में दोनों को उत्सुक बतलाया है। यदि आत्मा परमात्मा से मिलना चाहती है तो परमात्मा भी आत्मा से मिलने की इच्छा रखता है। वे इसी भाव को अपनी 'आवर्तन' शीर्षक कविता में इस प्रकार लिखते हैं :—

धूप आपनारे मिलाइते चाहे गन्धे,
गन्धो शे चाहे धूपेरे रोहिते जुड़े।
शूर आपनारे धोरा दिते चाहे छोंदे,
छोंद फिरिया छूटे लेते चाय शूरे।
भाव पेते चाय रूपेरे माझारे अङ्गो,
रूपो पेते चाय भावेरे माझारे छाड़ा।

---

१ स्टडीज़ इन मिस्टीसिज़्म, लेखक ए० ई० वेट, पृष्ठ २७६

ओसीम शे चाहे शीमार निबिड़ शंगो,
शीमा चाय होते ओशीमेरे माझे हारा।
प्रोलये श्रजने ना जानि ए कारे जुक्ति,
भाव होते रूपे ओविराम जाओया आशा।
बंध फिरछे खूजिया आपोन मुक्ति,
मुक्ति माँगिछे बांधोनेर माझे बाशा।

इसका अर्थ यही है कि—

धूप (एक सुगंधित द्रव्य) अपने को सुगंधि के साथ मिला देना चाहता है,
गंध भी अपने को धूप के साथ संबद्ध कर देना चाहती है।
स्वर अपने को छंद में समर्पित कर देना चाहता है,
छंद लौट कर स्वर के समीप दौड़ जाना चाहता है।
भाव सौंदर्य का अंग बनना चाहता है,
सौंदर्य भी अपने को भाव की अंतरात्मा में मुक्त करना चाहता है।
असीम ससीम का गाढ़ालिङ्गन करना चाहता है,
ससीम असीम में अपने को बिखरा देना चाहता है।
मैं नहीं जानता कि प्रलय और सृष्टि किसका रचना-वैचित्र्य है,
भाव और सौंदर्य में अविराम विनिमय होता है।
बद्ध अपनी मुक्ति खोजता फिरता है,
मुक्त बंधन में अपने आवास की भिक्षा माँगता है।

सभी रहस्यवादी एक प्रकार से परमात्मा का अनुभव नहीं कर सके। विविध मनुष्यों में मानसिक प्रवृत्तियाँ विविध प्रकार से पाई जाती हैं। जिन मनुष्यों की मानसिक प्रवृत्तियाँ अधिक संयत और अभ्यस्त होंगी वे परमात्मा का ग्रहण दूसरे ही रूप में करेंगे, जिन मनुष्यों की मानसिक प्रवृत्तियाँ परिष्कृत न होंगी वे रहस्यवाद की अनुभूति अस्पष्ट रूप में करेंगे। जिनकी मानसिक प्रवृत्तियाँ संसार के बंधन से रहित हो पवित्रता और पुण्य के प्रशांत वायुमंडल में विराजती हैं वे ईश्वर की अनुभूति में स्वयं अपना अस्तित्त्व खो देंगे। इन्हीं प्रवृत्तियों के अंतर के कारण परमात्मा की अनुभूति में अंतर हो जाता है और इसीलिए रहस्यवाद की परिभाषाओं में अंतर आ जाता है।

परमात्मा के संयोग में एक बात विशेष ध्यान देने योग्य है। जब आत्मा परमात्मा में लीन होती है तो उसके चारों ओर एक दैवी वातावरण की सृष्टि हो जाती है और आत्मा परमात्मा की उपस्थिति अपने समीप ही अनुभव करने लगती है। परमात्मा संसार से परे है और आत्मा संसार से आबद्ध! इस सांसारीय वातावरण में आत्मा को ज्ञात होने लगता है मानों समीप ही कोई बैठा हुआ शक्ति-संचार कर रहा है। आत्मा चुपचाप उस रहस्यमयी शक्ति से साहस और बल पाती हुई इस संसार में स्वर्ग का अनुभव करती है। मारगेरेट मेरी ने रोलिन को जो पत्र लिखा था, उसका भावार्थ यही था:—

"उस दिव्य त्राणकर्ता ने मुझसे कहा, मैं तुझे एक नई विभूति दूँगा। वह विभूति अभी तक दी हुई विभूतियों से उत्कृष्ट होगी। वह विभूति यही है कि मैं तेरी दृष्टि से कभी ओझल न होऊँगा। और विशेषता यह रहेगी कि तू सदैव मेरी उपस्थिति अनुभव करेगी।

मैं तो समझती हूँ अभी तक उन्होंने अपनी दया से मुझे जितनी विभूतियाँ प्रदान की हैं, उन सभों से यह विभूति श्रेष्ठतर है। क्योंकि उसी समय से उस दिव्य परमात्मा की उपस्थिति अविराम रूप से मैं अनुभव कर रही हूँ। जब मैं अकेली होती हूँ तो यह दिव्य उपस्थिति मेरे हृदय में इतनी श्रद्धा उत्पन्न करती है कि मैं अभिवादन के लिए पृथ्वी पर गिर पड़ती हूँ, जिससे मैं अपने त्राणकारी ईश्वर के सामने अपने को अस्तित्वहीन कर दूँगा। मैं यह भी अनुभव करती हूँ कि ये सब विभूतियाँ अटल शांति और उल्लास से पूर्ण रहती हैं।"[1]

इस पत्र से यह ज्ञात हो जाता है कि उत्कृष्ट ईश्वरीय विभूतियों का लक्षण ही यही है कि उससे परमात्मा के सामीप्य का परिचय उसी क्षण मिल जाय। उस समय आत्मा की क्या स्थिति होती है? वह आनंद में विभोर होकर परमात्मा की शक्तियों में अपना अस्तित्व मिला देती है; वह उत्सुकता से दौड़ कर परमात्मा की दिव्य उपस्थिति में छिप जाती है। उस समय उसकी प्रसन्नता, उत्सुकता और आकांक्षा की परिधि इन काले अक्षरों के

[1] दि ग्रेसेज़ अव् इंटीरियर प्रेयर—पुलेन
पृष्ठ ८९।

भीतर नहीं आ सकती। विलियम राल्फ इंज ने अपनी पुस्तक 'पर्सनल आईडियलिज्म एंड मिस्टिसिज्म' में उस दशा के वर्णन करने का प्रयत्न किया है :—

"इस दिव्य विभूति और शांति के दर्शन का स्वागत करने के लिए आत्मा दौड़ जाती है, जिस प्रकार बालक अपने पिता के घर को पहिचान कर उसकी ओर सहर्ष अग्रसर होता है।"[1]

कोई बालक अपने पिता के घर का रास्ता भूल जाय, वह यहाँ-वहाँ भटकता फिरे, उसे कोई सहारा न हो, उसी समय उसे यदि पिता के घर का रास्ता मिल जाय अथवा पिता का घर दीख पड़े तो उसके हृदय में कितनी प्रसन्नता होगी! उसी स्थिति की प्रसन्नता आत्मा में होती है, जब वह अपने पिता के समीप पहुँचने का द्वार पा जाती है।

उस स्थिति में उसके हृदय की तंत्री झनझना उठती है। रोम से—प्रत्येक रोम से एक प्रकार की संगीत-ध्वनि निकला करती है। वह संगीत उसी के यश में, उसी आदि-शक्ति के दर्शन-सुख में उत्पन्न होता है और आत्मा के संपूर्ण भाग में अनियंत्रित रूप से प्रवाहित होने लगता है। यही संगीत मानों आत्मा का भोजन है। इसीलिए सूफियों ने इस संगीत का नाम ग़िज़ाये रूह (غذاے روح) रक्खा है। इसी के द्वारा आध्यात्मिक प्रेम में पूर्णता आती है। यही संगीत आध्यात्मिक प्रेम की आग को और भी प्रज्वलित कर देता है और इसी तेज से आत्मा जगमगा उठती है।

इस संगीत में परमात्मा का स्वर होता है। उसी में परमात्मा के अलौकिक प्रेम का प्रकाशन होता है। इसलिए शायद लियोनार्ड (१८१६—१८८७) ने कहा था :—

"मेरे स्वामी ने मुझसे कहा था कि मेरे प्रेम की ध्वनि तुम्हारे कान में प्रतिध्वनित होगी। उसी प्रकार, जिस प्रकार मेघ से गर्जन की ध्वनि गूँज जाती है। दूसरी रात में, वास्तव में, अलौकिक प्रेम के तूफान का प्रकोप

---

[1] The human soul leaps forward to greet this vision of glory and harmony, as a child recognises and greets his fathers house.

पर्सनल आइडियलिज़्म एंड मिस्टिसिज़्म, पृष्ठ १६

(यदि इस शब्द में कुछ वैषम्य न हो) मुझ पर बरस पड़ा। उसका तीव्र वेग, जिस सर्व शक्ति से उसने मेरे सारे शरीर पर अधिकार जमा लिया, अत्यंत गाढ़ और मधुर आलिंगन, जिससे ईश्वर ने आत्मा को अपने में लीन कर लिया, संयोग के किसी अन्य हीन रूप से समता नहीं रखता।"

लियोनार्ड ने इसे 'तूफ़ान के प्रकोप' से समता दी है। वास्तव में उस समय प्रेम इतने वेग से शरीर और मन की शक्तियों पर आक्रमण करता है कि उससे वे एक ही वार निस्तब्ध होकर शिथिल हो जाते हैं। उस समय उस शरीर में केवल एक भावना का प्रवाह होता है। शरीर की शक्तियों में केवल एक ज्योति जाग्रत रहती है और वह ज्योति होती है अलौकिक प्रेम के प्रबल आवेग की। यह आवेग किसी भी सांसारिक भावना के आवेग से सदैव भिन्न है। उसका कारण यह है कि सांसारिक भावना का आवेग क्षणिक होता है और उसकी गहराई कम होती है। यह अलौकिक आवेग स्थायी रहता है और उसकी भावना इतनी गहरी होती है कि उससे शरीर की सभी शक्तियाँ ओत-प्रोत हो जाती हैं। उसका वर्णन 'तूफ़ान के प्रकोप द्वारा ही किया जा सकता है, किसी अन्य शब्द द्वारा नहीं।

उस प्रेम के प्रबल आक्रमण में एक विशेषता रहती है। जिसका अनुभव टामसन ने पूर्ण रूप से किया था। उसने 'आन दि साइट एंड एस्पेशली आन दि कानटैक्ट विथ् दि सावरेन गुड'[1] वाले परिच्छेद में लिखा था कि हम ईश्वर को हृदयंगम करते हैं अपने आंतरिक और रहस्यमय स्पर्श द्वारा। हम यह अनुभव करते हैं कि वह हम में विश्राम कर रहा है। यह आंतरिक (अथवा उसे दिव्य भी कह सकते हैं) संबंध बहुत ही सूक्ष्म और गुप्त कला है। और इसे हम अनुभव द्वारा ही जान सकते हैं; बुद्धि द्वारा नहीं।

जब आत्मा को यह अनुभव होने लगता है कि परमात्मा मुझमें विश्राम कर रहा है तो उसमें एक प्रकार के गौरव की सृष्टि हो जाती है। जिस प्रकार एक दरिद्र के पास सौ रुपये आ जाने पर वह उन्हें अभिमान तथा गर्व से देखता है, उनकी रक्षा करता है। स्वयं उपभोग नहीं करता, वरन् उन्हें देख-देख कर ही संतोष कर लेता है, ठीक उसी प्रकार, आत्मा

1पुलेन रचित, दि ग्रेसेज अव् इंटीरियर प्रेयर, पृष्ठ १०७

परमात्मा रूपी धन को अपनी अंतरंग भावनाओं में छिपाए, संसार में गर्व और अभिमान से रहती है तथा संसार के मनुष्यों की हँसी उड़ाती है, उन्हें तुच्छ गिनती है। ऐसी अवस्था में एए अतर रहता है। ग़रीब का धन मूक होता है, उसमें बोलने अथवा अनुभव करने की शक्ति ही नहीं होती। पर परमात्मा की बात दूसरी है। वह प्रेम के महत्त्व को जानता है तथा उसे अनुभव करता है। उसमें भी प्रेम का प्रबल प्रवाह होता है, वह भी आत्मा के संयोग से सुखी होता है। उस समय जब आत्मा और परमात्मा की सत्ता एक हो जाती है तो परमात्मा आत्मा में प्रकट होकर संसार में घोषित करने लगता है :—

'मुझ को कहाँ ढूँढ़ै बंदे,
मैं तो तेरे पास में।'

(कबीर)



परिशिष्ट

क

रहस्यवाद से संबंध रखनेवाले कबीर के कुछ चुने हुए पद

चलौ सखी जाइये तहाँ, जहाँ गये पाइयँ परमानंद।
यहु मन आमन धूमना,
मेरौ तन छीजत नित जाइ
चिंतामणि चित्त चोरियौ,
ताथैं कछु न सुहाइ।
सुनि सखि सुपने की गति ऐसी,
हरि आये हम पास
सोवत ही जगाइया,
जागत भये उदास।
चलु सखी विलम न कीजिये
जब लगि सांस सरीर,
मिलि रहिये जगनाथ सूँ,
यूँ कहैं दास कबीर।

वाल्हा आव हमारे गेह रे
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब को कहै तुम्हारी नारी
मोकों इहै अदेह रे,
एकमेक ह्वै सेज न सोवै,
तब लग कैसा नेह रे।
आन न भावै, नींद न आवै
ग्रिह बन धरै न धीर रे,
ज्यूँ कामी कों काम पियारा,
ज्यूँ प्यासे कूँ नीर रे।
है कोई ऐसा पर उपकारी,
हरिसूँ कहै सुनाइ रे,
ऐसे हाल कबीर भये हैं,
बिन देखे जिव जाय रे।

वै दिन कब आवैंगे माइ।
जा कारनि हम देह धरी है,
मिलिबौ अंग लगाइ।
हौं जानूँ जे हिल मिल खेलूँ,
तन मन प्रान समाइ,
या कामना करौ परपूरन,
समरथ हौ राम राइ।
माँहि उदासी माधौ चाहै,
चितवत रैनि बिहाइ
सेज हमारी सिंघ भई है,
जब सोऊँ तब खाइ।
यहु अरदास दास की सुनिये
तन की तपति बुझाइ,
कहै कबीर मिलै जे साँई,
मिलि करि मंगल गाइ।

दुलहिनी गावहु मंगलचार,
 हम घरि आए हो राजा राम भतार।
तन रत करि मैं मन रति करि हूँ,
 पंच तत्त बराती,
रामदेव मोरे पाहुने आए,
 मैं जोबन मैं माती।
सरीर सरोवर वेदी करि हूँ,
 ब्रह्मा वेद उचार,
रामदेव संगि भांवर लेहूँ,
 धनि धनि भाग हमार।
सुर तैंतीसूँ कौतिग आए,
 मुनिवर सहस अठासी,
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं,
 पुरिष एक अबिनासी।

हरि मेरा पीव माई हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सके मेरा जीव।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया,
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।
किया स्यंगार मिलन के तांई,
काहे न मिलो राजा राम गुसांई।
अब की बेर मिलन जो पाऊँ,
कहै कबीर भौजल नहिं आऊँ।

कियो सिंगार मिलन के तांई,
हरि न मिले जग जीवन गुसांई।
हरि मेरो पि रहो हरि की बहुरिया,
राम बड़े मैं तनक लहुरिया।
धनि पिय एकै संग बसेरा,
सेज एक पै मिलन दुहेरा।
धन्न सुहागिन जो पिय भावै,
कहिं कबीर फिर जनमि न आवै।

अवधू ऐसा ज्ञान विचारी
तातैं भई पुरिष थैं नारी।
नां हूँ परनी ना हूँ क्वांरी
पूत जन्यू द्यौ हारी,
काली मूंड को एक न छोड़्यो
अजहूँ अकन कुवांरी।
ब्राह्मन कै ब्रम्हनेटी कहियो
जोगी कै घरि चेली,
कलिमा पढ़ि पढ़ि भई तुरकनी
अजहूँ फिरौं अकेली।
पीहरि जाऊँ न रहूँ सासुरै
पुरषहि अंगि न लाऊँ,
कहै कबीर सुनहु रे सन्तो
अंगहि अँग न छुवाऊँ।

मैं सासने पीव गौंहनि आई ।
साँई संग साध नहीं पूगी
गयो जोबन सुपिना की नाँई ।
पंच जना मिलि मंडप छायो
तीनि जनां मिलि लगन लिखाई,
सखी सहेली मंगल गावें
सुख दुख माथै हलद चढ़ाई ।
नाना रंगैं भांवरि फेरी
गांठि जोरि बैठे पति ताई,
पूरि सुहाग भयो बिन दुलहा
चौक के रंगि धर्‌यो सगौ भाई ।
अपने पुरिष मुख कबहुँ न देख्यो
सती होत समझी समझाई,
कहै कबीर हूँ सर रचि मरिहूँ
तिरौं कन्त लै तूर बजाई ।

कब देखूँ मेरे राम सनेही,
जा बिन दुख पावै मेरी देही।
हूँ तेरा पंथ निहारूँ स्वामी,
कब रे मिलहुगे अंतरजामी।
जैसे जल बिन मीन तलपै,
ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै।
निस दिन हरि बिन नींद न आवै,
दरस पियासी राम क्यों सचुपावै।
कहै कबीर अब बिलंब न कीजै
अपनों जानि मोहि दरसन दीजै।

हरि कौ बिलोवनौं बिलोइ मेरी माई,
ऐसौ बिलोइ जैसे तत न जाई।
तन करि मटकी मनहिं बिलोइ,
ता मटकी में पवन समोइ।
इला प्यंगुला सुषमन नारी,
वेगि बिलोइ ठाढ़ी छछिहारी।
कहै कबीर गुजरी बौरानी,
मटकी फूटी जोति समानी।

भलैं नींदौ भलैं नींदौ भलैं नींदौ लोग,
तन मन रांम पियारे जोग।
मैं बौरी मेरे राम भतार,
ता कारनि रचि करौं सिंगार।
जैसे धुबिया रज मल धोवै,
हर तप रत सब निंदक खोवै।
निंदक मेरे माई बाप,
जन्म जन्म के काटे पाप।
निंदक मेरे प्रान अधार,
बिन बेगारि चलावै भार।
कहै कबीर निंदक बलिहारी,
आप रहै जन पार उतारी।

जो चरखा जरि जाय बढ़ैया ना मरै।
मैं कातौं सूत हजार चरखुला जिन जरै।
बाबा मोर ब्याह कराव अच्छा बरहि तकाय,
जौ लौं अच्छा वर न मिलै तौ लौं तुमहिं बिहाय।
प्रथमें नगर पहूँचते परि गौ सोग संताप,
एक अचंभा हम देखा जो बिटिया ब्याहल बाप।
समधी के घर समधी आए आए बहू के भाय,
गोड़े चूहा दै दै चरखा दियो दिढ़ाय।
देव लोक मर जायँगे एक न मरै बढ़ाय,
यह मन रंजन कारणै चरखा दियो दिढ़ाय,
कहहि कबीर सुनौ हो संतो चरखा लखै जो कोय,
जो यह चरखा लखि परै ताको आवागमन न होय।

परौसनि मांगे कंत हमारा।
पीव क्यूँ बौरी मिलहि उधारा।
मासा मांगे रती न देऊँ,
घटै मेरा प्रेम तो कासनि लेउं।
राखि परोसनि लरिका मोरा,
जे कछु पाउं सु आधा तोरा।
बन बन ढूँढ़ौं नैन भरि जोऊँ,
पीव न मिलै तो बिलखि करि रोऊँ।
कहै कबीर यहु सहज हमारा,
बिरली सुहागिन कंत पियारा।

हरि ठग जग की ठगौरी लाई ।
हरि के वियोग कैसे जीऊँ मेरीमाई ।
कौन पुरिष को काकी नारी,
अभिअंतर तुम्ह लेहु बिचारी ।
कौन पूत को काको बाप,
कौन मरे कौन करै संताप ।
कहै कबीर ठग सों मन माना,
गई ठगौरी ठग पहिचाना ।

को बीनै प्रेम लागौ री, माई को बीनै।
राम रसायन माते री, माई को बीनै।
पाई पाई तू पुतिहाई,
पाई की तुरिया बेच खाई री, माई को बीनै।
ऐसे पाई पर बिथुराई,
त्यूं रस आनि बनायो री, माई को बीनै।
नाचै ताना नाचै बाना,
नाचै कूंच पुराना री, माई को बीनै।
करगहि बैठि कबीरा नाचै,
चूहै काट्या ताना री, माई को बीनै।

बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये,
भाग बड़े घर बैठे आये ।
मंगलचार मांहि मन राखों,
राम रसायन रसना चाखों ।
मंदिर मांहि भया उजियारा,
लै सूती अपना पीव पियारा ।
मैं रे निरासी जै निधि पाई,
हमहिं कहा यह तुमहिं बड़ाई ।
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हा,
सखी सुहाग राम मोहिं दीन्हा ।

अब मोहिं ले चल नणद के बीर,
अपने देसा ।
इन पंचन मिलि लूटी हूँ
कुसंग आहि बिदेसा ।
गंग तीर मोरि खेती बारी
जमुन तीर खरिहाना,
सातों बिरही मेरे नीपजे
पंचू मोर किसाना ।
कहै कबीर यहु अकथ कथा है
कहता कही न जाई,
सहज भाइ जिहि ऊपजै
ते रमि रहै समाई ।

जन्म मरन का भ्रम गया गोविन्द लव लागी।
जीवन सुन्न समानिया
गुरु साखी जागी।
कासी ते धुनि उपजै
धुनि कासी जाई,
कासी फूटी पंडिता
धुनि कहां समाई।
त्रिकुटी संधि मैं पेखिया
घटहू घट जागी,
ऐसी बुद्धि समाचारी
घट माँहि तियागी।
आप आपते जानिया
तेज तेज समाना,
कहु कबीर अब जानिया
गोविंद मन माना।

गगन रसाल चुए मेरी भाठी।
  संचि महारस तन भय काठी।
याकौं कहिए सहज मतिवारा,
  जीवत राम रस ज्ञान विचारा।
सहज कलालनि जौ मिलि आई।
  आनंदि माते अनदिन जाई।
चीन्हत चीत निरंजन लाया,
  कहु कबीर तौ अनुभव पाया।

अब न बसूं इहि गांइ गुसांई,
तेरे नेवगी खरे सयाने हो राम।
नगर एक यहां जीव धरम हता
बसैं जु पंच किसाना,
नैनूं निकट श्रवनूं रसनूं
इंद्री कह्या न माने हो राम।
गांइकु ठाकुर खेत कुनापै
काइथ खरच न पारै,
जौरि जेवरी खेति पसारै
सब मिलि मोको मारै हो राम।
खोटो महतो विकट बलाही
सिर कसदम का पारै,
बुरौ दिवान दादि नहिं लागै
इक बांधैं ईक मारै हो राम।
धरम राइ जब लेखा मांगा
बाकी निकसी भारी,
पांचि, किसाना भाजि गये हैं
जीव धर बांध्यो पारी हो राम।
कहै कबीर सुनहु रे संतो
हरि भजि बांध्यो भेरा,
अब की बेर बकसि बंदे कों
सब खत करौं निबेरा।

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मनि चढ़ा मगन रस पीवै त्रिभवन भया उजियारा।
गुड़ करि ग्यांन ध्यान कर महुवा
भव भाठी कर भारा,
सुषमन नारी सहज समानी
पीवै पीवन हारा।
दोइ पुड़ जोड़ि चिगाई भाठी
चुया महा रस भारी,
काम क्रोध दोइ किया पलीता
छूटि गई संसारी।
सुन्नि मंडल में मंदला बाजै
तहां मेरा मन नाचै,
गुर प्रसादि अमृत फल पाया
सहजि सुषमना काछै।
पूरा मिल्या तबै सुष उपज्यो
तन की तपति बुझानी,
कहै कबीर भव बंधन छूटै
जोतिहि जोति समानी।

अवधू गगन मंडल घर कीजै।
अमृत झरे सदा सुख उपजै
बंक नालि रस पीवै।
मूल बांधि सर गगन समाना
सुषमन यों तन लागी,
काम क्रोध दोउ भया पलीता
तहां जोगिनी जागी।
मनवां जाइ दरीबे बैठा
मगन भया रसि लागा,
कहै कबीर जिय संसा नाहीं
सबद अनाहद जागा।

कोई पीवै रे रस राम नाम का, जो पीवै सो जोगी रे।
संतो सेवा करो राम की और न दूजा भोगी रे।
यहु रस तौ सब फीका भया
ब्रह्म अगनि पर जारी रे,
ईश्वर गौरी पीवन लागे राम तनी मतवारी रे।
चंद सूर दोउ भाठी कीन्ही सुषमनि चिगवा लागी रे,
अमृत कूंपी सांचा पुरया मेरी त्रिष्णा भागी रे।
यहु रस पीवै गूंगा गहिला ताकी कोई बूझै सार रे।
कहै कबीर महा रस महंगा कोई पीवैगा पीवनि हार रे।

दूभर पनिया भर्‌या न जाई।
अधिक त्रिषा हरि बिन न बुझाई।
ऊपर नीर लेज तलिहारी,
कैसे नीर भरै पनिहारी।
ऊधर्‌यो कूप घाट भयो भारी,
चली निरास पंच पनिहारी।
गुर उपदेस भरीले नीरा,
हरषि हरषि जल पीवै कबीरा।

लावौ बाबा आगि जलावो घरा रे।
ता कारनि मन धंधौ परा रे।
इक डांइनि मेरे मन में बसे रे,
नित उठि मेरे जीय कों डसे रे।
ता डाइनि के लरिका पाँच रे,
निसि दिन मोहिं नचावें नाच रे।
कहै कबीर हूँ ताकौं दास,
डांइनि कै संग रहै उदास।

रे मन बैठि कितै जिनि जासी।
हिरदै सरोवर है अविनासी।
काया मधे कोटि तीरथ
काया मधे कासी।
काया मधे कंवलपति
काया मधे बैकुंठवासी।
उलटि पवन षटचक्र निवासी
तीरथराज गंग तट वासी।
गगनमंडल रवि ससि दोई तारा
उलटी कूंची लाग किवारा।
कहै कबीर भयो उजियारा
पंच मारि एक रह्यो निनारा।

सरवर तटि हंसिनीं तिसाई।
जुगति बिना हरि जल पिया न जाई।
पिया चाहै तौ लै खग सारी,
उड़ि न सकै दोऊ पर भारी।
कुंभ लियें ठाढ़ी पनिहारी,
गुण बिन नीर भरै कैसे नारी।
कहै कबीर गुर एक बुधि बताई,
सहज सुभाइ मिलै रांम राई।

चोलौ भाई राम की दुहाई।
इहि रस सिव सनकादिक माते, पीवत अजहु न अघाई।
दूला पंगुला भाठी कीही ब्रह्म अगिन परजारी,
ससि हर सूर द्वार दस मूँदे, लागी जोग जुग तारी।
मति मतवाला पीवै राम रस, दूजा कछु न सुहाई,
उलटी गंगा नीर बहि आया अमृत धार चुवाई।
पंच जने सो संग करि लीहे, चलत खुमारी लागी
प्रेम पियाले पीवन लागे, सोवत नागिना जागी।
सहज सुन्नि में जिन रस चाख्या, सतगुरु थैं सुधि पाई,
दास कबीर इहि रसि माता, कबहूँ उछकि न जाई।

विष्णु ध्यान सनान करि रे
बाहरि अंग धोइ रे।
साच बिन सीझसि नहीं
कोई ज्ञान दृष्ट जोइ रे।
जंजाल माँहिं जीव राखै
सुधि नहीं सरीर रे,
अभिअंतरि भेदै नहीं
कोई बाहिर न्हावै नीर रे।
निहकर्म नदी ज्ञान जल
सुंन्नि मडंल मांहिं रे,
औधूत जोगी आतमां
कोई पेड़े संजमि न्हानि रे।
इला प्यंगुला सुषमनां
पछिम गंगा बालि रे;
कहै कबीर कुसमल झड़ै
कोई मांहि लौ अंग पषालि रे।

सो जोगी जाकै सहज भाइ,
अकल प्रीति की भीख खाइ।
सबद अनाहद सींगी नाद,
काम क्रोध विषिया न बाद।
मन मुद्रा जाकै गुर कौ ग्यान,
त्रिकुट कोट में धरत ध्यान।
मनहीं करन को करै सनान,
गुर को सबद लै लै धरै ध्यान।
काया कासी खोजै बास,
तहाँ जोति सरूप भयौ परगास।
ग्यान मेषली सहज भाइ,
बंक नालि कौ रस खाइ।
जोग मूल को देइ बंद,
कहि कबीर थिर होइ कंद

जंगल में का सोवना, औघट है घाटा।
स्यंघ बाघ गज प्रजलै, अरु लंबी बाटा।
निसि बासुरी पेंड़ा पड़ै
जमदांनी लूटै,
सूर धीर साचै मतै
सोइ जन छूटै।
चालि चालि मन माहरा
पुर पटन गहिये,
मिलिये त्रिभुवन नाथ सों
निरभै होइ रहिए।
अमर नहीं संसार में
बिनसै नर देही,
कहै कबीर बेसास सूं
भजि राम सनेही।

राम बिन तन की ताप न जाई।
जल की अगिन उठी अधिकाई।
तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीना,
जल मैं रहो जलहिं बिन छीना।
तुम्ह पिंजरा मैं सुवना तोरा,
दरसन देहु भाग बड़ मोरा
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला,
कहै कबीर राम रमूँ अकेला।

राम बान अन्ययाले तीर।
जाहि लागे सो जाने पीर।
तन मन खोजो चोट न पाऊं,
औषद मूली कहां घसि लाऊं।
एकहि रूप दीसे सब नारी,
न जानों को पियहि पियारी।
कहै कबीर जा मस्तक भाग,
न जानुं काहू देइ सुहाग।

भँवर उड़े बग बैठे आई।
रैन गई दिवसो चलि जाई।
हल हल काँपै बाला जीव,
ना जानों का करि है पीउ।
काँचे बासन टिकै न पानी,
उड़िगै हंस काया कुंभिलानी।
काग उड़ावत भुजा पिरानी,
कहहि कबीर यह कथा सिरानी।

देखि देखि जिय अचरज होई।
यह पद बूझै बिरला कोई।
धरती उलटि अकासै जाय,
चिउँटी के मुख हस्ति समाय।
बिना पवन सो पर्वत उड़े,
जीव जंतु सब वृच्छा चढ़े।
सूखे सरवर उठे हिलोरा,
बिनु जल चकवा करत किलोरा,
बैठा पंडित पढ़े पुरान,
बिना देखे का करत बखान।
कहहि कबीर यह पद को जान,
सोई संत सदा परवान।

मैं सबनि में औरनि में हूँ सब
मेरी बिलगि बिलगि बिलगाई हो।
कोई कहौ कबीर कोई कहौ राम राई हो
ना हम बार बूढ़ नांही हम
ना हमरे चिलकाई हो,
पठरा न जाऊँ अरबा नहीं आऊँ
सहजि रहूँ हरिआई हो।
बोढ़न हमरे एक पछेवरा
लोक बोलैं इकताई हो,
जुलहै तनि बुनि पांन न पावल
फारि बुनी दस ठाई हो।
त्रिगुण रहित फल रमि हम राखल
तब हमरौ नांउ राय राई हो,
जग मैं देखौं जग न देखै मोही
इहि कबीर कछु पाई हो।

अब मैं जाणि बौरे केवल राइ की कहानी।
मंझा जोति राम प्रकासै
गुर गमि बाणीं।
तरवर एक अनंत मूरति
सुरता लेहु पिछाणीं,
साखा पेड़ फूल फल नांही
ताकी अमृत बाणी।
पुहप बास भँवरा एक राता
बारा ले उर धरिया,
सोलह मंझै पवन झकोरै
आकासे फल फलिया।
सहज समाधि बिरष यहु सींचा
धरती जलहर सोष्या,
कहै कबीर तास मैं चेला
जिनि यहु तरबर पेष्या।

अवधू, सो जोगी गुरु मेरा,
जो या पद का करै निबेरा।
तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा
बिन फूला फल लागा,
साखा पत्र कछू नहीं वांके
अष्ट गगन मुख बागा।
पैर बिन निरति करां बिन बाजै
जिभ्या हींणा गावै,
गावणहारे कै रूप न रेषा
सतगुरु होइ लखावै।
पंखी का खोज, मीन का मारग
कहै कबीर बिचारी,
अपरंपार पार परसोतम
वा मूरति की बलिहारी।

अजहूँ बीच कैसे दरसन तोरा,
बिन दरसन मन मानैं क्यो मेरा।
हमहि कुसेवग क्या तुम्हहि अजांनां,
दुइ मैं दोस कहो किहै रांमां।
तुम्ह कहियत त्रिभुवन पति राजा,
मन वांछित सब पुरवन काजा।
कहैं कबीर हरि दरस दिखाओ,
हमहिं बुलाओ कै तुम्ह चलि आओ।

आऊंगा न जाऊंगा, मरूंगा न जिऊंगा।
गुरु के सबद में रमि रमि रहूँगा।
आप कटोरा आप थारी,
आपै पुरखा आपै नारी
आप सदाफल आपै नींबू,
आपै मुसलमान आपै हिन्दू।
आपै मछकछ आपै जाल,
आपै झींवर आपै काल।
कहै कबीर हम नाहीं रे नाही,
न हम जीवत न मुवले मांही।

अकथ कहानी प्रेम की
कछू कही न जाई,
गूंगे केरि सरकरा
बैठे मुसकाई।
भोमि बिना अरु बीज बिन
तरवर एक भाई
अनंत फल प्रकासिया
गुरु दीया बताई।
मन थिर बैसि बिचारिया
रामहि ल्यौ लाई,
झूठी मन में बिस्तरी
सब थोथी बाई।
कहै कबीर सकति कछु नाहीं
गुर भया सहाई,
आवण जाणी मिटि गई,
मन मनहि समाई।

लोका जानि न भूलो भाई।
खालिक खलिक खलक में
खालिक सब घट रह्यो समाई।
अला एकै नूर उपनाया
ताकी कैसी निंदा,।
ता नूर थैं सब जग कीया
कौन भला कौन मंदा।
ता अला की गति नहीं जानी
गुरि गुड़ दीया मीठा,
कहै कबीर मैं पूरा पाया
सब घट साहिब दीठा

है कोई गुरज्ञानी जग उलटि बेद बूझै,
पानी में पावक बरै, अंधहि आंख न सूझै।
गाई तो नाहर खायो, हरिन खायो चीता,
काग लंगर फाँदि कै बटेर बाज जीता।
मूस तो मजार खायो, स्यार खायो स्वाना,
आदि कोऊ उदेश जाने, तासु बेश बाना
एकहि दादुर खायो, पांच खायो भुवंगा,
कहहि कबीर पुकार के है दोऊ एकै संगा।

मैं डोरे डोरे आऊँगा, तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।
सूत बहुत कुछ थोरा, ताथैं ले कंथा डोरा,
कंथा डोरा लागा, जब जुरा मरण भौ भागा,
जहाँ सूत कपास न पूनी, तहाँ बसे एक मूनी,
उस मूनी सूं चित लाउंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आउंगा।
मेर डंड इक छाजा, तहाँ बसै इक राजा,
तिस राजा सूं चित लाऊंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।
जहाँ बहु हीरा घन मोती, तहाँ तत लाइ ले जोती,
तिस जोतिहिं जोति मिलाऊंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।
जहाँ ऊगै सूर न चंदा, तहाँ देख्यां एक अनंदा,
उस आनंद सूं चित लाऊंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।
मूल बंध एक पाया, तहाँ सिंह गणेश्वर राजा,
तिस मूलहिं मूल मिलाऊंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।
कबीरा तालिब तोरा, तहाँ गोपाल हरी गुर मोरा,
तहाँ हेत हरी चित लाऊंगा।
तो मैं बहुरि न भौ जलि आऊंगा।

अब घट प्रगट भये राम राई।
सोधि सरीर कंचन की नाईं।
कनक कसौटी जैसे कसि लेइ सुनारा,
सोधि सरीर भयो तन सारा।
उपजत उपजत बहुत उपाईं,
मन थिर भयो तबै थिति पाईं।
बाहर खोजत जनम गंवाया,
उनमना ध्यान घट भीतर पाया।
बिन परचै तन कांच कथीरा,
परचै कंचन भया कबीरा।

हम सब माँहि सकल हम माँही।
हम थैं और दूसरा नांही।
तीन लोक में हमारा पसारा,
आवागमन सब खेल हमारा।
खट दरसन कहियत हम भेखा,
हमहीं अतीत रूप नहीं रेखा।
हमहीं आप कबीर कहावा,
हमहीं अपना आप लखावा।

बहुरि हम काहे कूं आवहिंगे।
बिछुरे पंचतत्त की रचना
तब हम रामहिं पावहिंगे।
पृथ्वी का गुण पानी सोष्या
पानी तेज मिलावहिंगे।
तेज पवन मिलि पवन सबद मिलि
ये कहि गालि तवावहिंगे।
ऐसे हम जो वेद के बिछुरे
सुन्नहि माँहि समावहिंगे।
जैसे जलहि तरंग तरंगनी
ऐसे हम दिखलावहिंगे।
कहै कबीर स्वामी सुख सागर
हंसहि हंस मिलावहिंगे।

दरियाव की लहर दरियाव है जी
दरियाव और लहर में भिन्न कोयम।
उठे तो नीर है बैठे तो नीर है
कहो दूसरा किस तरह होयम।
उसी नाम को फेर के लहर धरा
लहर के कहे क्या नीर खोयम।
जक्त ही फेर सब जक्त है ब्रह्म में
ज्ञान करि देख कब्बीर गोयम।

है कोई दिल दरवेश तेरा।
नासूत मलकूत जबरूत को छोड़िके
जाइ लाहूत पर करै डेरा।
अकिल की फहम ते इलम रोसन करै
चढ़ै खरसान तब होय उजेरा,
हिर्स हैवान को मारि मरदन करै
नफस सैतान जब होय जेरा।
गौस और कुतुब दिल फिकर जाका करै
फतह कर किला तहं दौर फेरा,
तख़्त पर बैठिके अदल इनसाफ़ कर
दोजख औ भिस्त का करु निवेरा।
अजाब सवाब का सबब पहुँचे नहीं
जहां है यार महबूब मेरा,
कहै कब्बीर वह छोड़ि आगे चला
हुआ असवार तब दिया दरेरा।

मन मस्त हुआ तब क्यों बोलै।
हीरा पायो गांठ गठियायो
बार बार वाको क्यों खोलै।
हलकी थी जब चढ़ी तराजू
पूरी भई तब क्यों तोलै।
सुरत कलारी भई मतवारी
मदवा पी गई बिन तोलै।
हंसा पाये मान सरोवर
ताल तलैया क्यों डोलै।
तेरा साहब है घट मांहीं
बाहर नैना क्यों खोलै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
साहिब मिल गये तिल ओलै।

तोरी गठरी में लागे चोर
बटोहिया का रे सोवै।
पांच-पचीस तीन हैं चुरवा
यह सब कीन्हा सोर,
बटोहिया का रे सोवै।
जागु सवेरा बाट अनेड़ा
फिर नहि लागै जोर,
बटोहिया का रे सोवै।
भवसागर इक नदी बहतु है
बिन उतरे जाव बोर,
बटोहिया का रे सोवै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
जागत कीजे भोर,
बटोहिया का रे सोवै।

पिया मोरा जागै मैं कैसे सोई री ।
पाँच सखी मेरे संग की सहेली
उन रङ्ग रङ्गी पिया रङ्ग न मिली री ।
सास सयानी ननद दोरानी
उन डर डरी पिय सार न जानी री ।
द्वादस ऊपर सेज बिछानी
चढ़ न सकौं मारी लाज लजानी री ।
रात दिवस मोंहि कूका मारै
मैं न सुना रचि रहि सङ्ग जानी री ।
कह कबीर सुनु सखी सयानी
बिन सतगुर पिय मिलै न मिलानी री ।

ये अँखियाँ अलसानी हो;
पिय सेज चलो।
खंभ पकरि पतंग अस डोलै
बोलै मधुरी बानी।
फूलन सेज बिछाय जो राख्यो
पिया बिना कुंभिलानी।
धीरे पाँव धरो पलंगा पर
जागत ननद जिठानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
लोक लाज बिलछानी।

नैहरवा हमका नहिं भावै।
साँई की नगरी परम अति सुन्दर
जहँ कोई जाय न आवै।
चाँद सुरज जहँ पवन न पानी
को संदेस पहुँचावै।
दरद यह साँई को सुनावै।
आगे चलौं पंथ नहिं सूझै
पीछे दोस लगावै।
केहि विधि ससुरे जाउं मोरी सजनी
बिरहा जोर जनावै।
बिषै रस नाच नचावै।
बिन सतगुरु अपनी नहिं कोई
जो यह राह बतावै।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
सुपने न प्रीतम पावै।
तपन यह जिय की बुझावै।

पिय ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली।
ऊँची अटरिया जरद किनरिया
लगी नाम की डोरिया।
चांद सुरज सम दियना बरत हैं
ता बिच भूली डगरिया।
पाँच पचीस तीन घर बनिया
मनुआँ है चौधरिया।
मुंशी है कोतवाल ज्ञान को
चहुँ दिसि लगी बजरिया।
आठ मरातिब दस दरवाजे
नौ में लगी किवरिया।
खिरकि बैठ गोरी चितवन लागी
उपरां झांप झोपरिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
गुरु चरनन बलिहरिया।

घूंघट का पट खोल रे
तोको पीव मिलैंगे।
घट घट में वह साईं रमता
कटुक बचन मति बोल रे।
धन जोबन का गर्व न करिये
झूठा पंचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दिया न बार ले
आसा से मत डोल रे।
जोग जुगत सों रंग महल में
पिय पायो अनमोल रे।
कहत कबीर आनंद भयो है
बाजत अनहद ढोल रे।

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी।
ऊ रंगरेजवा के मरम न जानै
नहिं मिले धोबिया कवन करै उजरी।
तन कै कूँडी ज्ञान सउंदन
साबुन महँग बिकाय या नगरी।
पहिरि ओढ़ि कै चली ससुरिया
गौवां के लोग कहैं बड़ी फुहरी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बिन सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी।

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पंच तत्त कै बनी चुनरिया
सोरह सै बंद लागे जिया।
यह चुनरी मोरे मैके ते आई
ससुरे में मनुआं खोय दिया।
मलि मलि धोई दाग न छूटै
ज्ञान को साबुन लाय पिया।
कहत कबीर दाग तब छुटि है
जब साहब अपनाय लिया।

सतगुरु हैं रंगरेज चुनर मोरी रंग डारी।
स्याही रंग छुड़ाय के रे
दियो मजीठा रंग,
धोये से छूटै नहीं रे
दिन दिन होत सुरंग।
भाव के कुंड नेह के जल में
प्रेम रंग दई बोर,
चसकी चास लगाय के रे
खूब रंगी झकझोर।
सतगुर ने चुनरी रंगी रे
सतगुर चतुर सुजान,
सब कछु उन पर वार दूं रे
तन मन धन औ प्रान।
कह कबीर रंगरेज गुर रे
मुझ पर हुये दयाल,
सीतल चुनरी ओढ के रे
भइ हों मगन निहाल।

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे क ताना काहे कै भरनी
कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी
सुषमन तार से बीनी चदरिया।
आठ कमल दल चरखा डोलै
पांच तत्त गुन तीनी चदरिया।
सांई को सियत मास दस लागे
ठोक ठोक कै बीनी चदरिया।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ी
ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी
ज्यों की त्यों धरि दीनीं चदरिया।

मो को कहाँ ढूंढ़ै बंदे,
मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी
ना मैं छुरी गंडास में।
नहीं खाल में नहीं पोंछ में
ना हड्डी ना मांस में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद
ना काबे कैलास में।
ना तौ कौनों क्रिया कर्म में
नहीं जोग बैराग में।
खोजी होय तुरतै मिलिहौं
पल भर की तलास में।
मैं तो रहौं सहर के बाहर
मेरी पुरी मवास में।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
सब सांसों की सांस में।

ख

कबीर का जीवन-वृत्त

कबीर के जीवन-वृत्त के विषय में निश्चित रीति से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कबीर के जितने जीवन-वृत्त पाये जाते हैं उनमें एक तो तिथि आदि के विषय में कुछ नहीं लिखा, दूसरे उनमें बहुत सी अलौकिक घटनाओं का समावेश है। स्वयं कबीर ने अपने विषय में कुछ बातें कह कर ही संतोष कर लिया है। उनसे हमें उनकी जाति और व्यक्तिगत जीवन का परिचय मात्र मिलता है इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

कबीर-पंथ के ग्रंथों में कबीर के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। उनमें कबीर की महत्ता सिद्ध करने के लिए उनमें गोरखनाथ[1] और चित्रगुप्त[2] तक से वार्तालाप कराया गया है। किंतु उनकी जन्म-तिथि और जन्म के विषय पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया। कबीर चरित्र-बोध[3] ही में जन्म तिथि के विषय में निर्देश किया गया है।

"कबीर साहब का काशी में प्रकट होना

संवत् चौदह सौ पचपन विक्रमी जेष्ठ सुदी पूर्णिमा सोमवार के दिन सत्य पुरुष का तेज काशी के लहर तालाब में उतरा। उस समय पृथ्वी और आकाश प्रकाशित हो गया।......उस समय अष्टानंद वैष्णव तालाब पर बैठे थे, वृष्टि हो रही थी, बादल आकाश में घिरे रहने के कारण अंधकार छाया हुआ था, और बिजली चमक रही थी, जिस समय वह प्रकाश तालाब में

---

[1]कबीर गोरख की गोष्ठी, हस्तलिखित प्रति सं० १८७०, (ना० प्र० सभा)

[2]अमरसिंह बोध (कबीरसागर नं० ४) स्वामी युगलानंद द्वारा संशोधित, पृष्ठ १८ (संवत् १६६३, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई)

[3]कबीर चरित्र-बोध (बोधसागर, स्वामी युगलानंद द्वारा संशोधित पृष्ठ ६, संवत् १६६३, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई)

उतरा उस समय समस्त तालाब जगमग-जगमग करने लगा और बड़ा प्रकाश हुआ। वह प्रकाश उस तालाब में ठहर गया और प्रत्येक दिशाएँ जगमगाहट से परिपूर्ण हो गईं।"

कबीर-पंथियों में कबीर के जन्म के संबंध में एक दोहा प्रसिद्ध है :—

चौदह सै पचपन साल गए, चंद्रवार एक ठाट ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी प्रगट भए॥

इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म संवत् १४५५ की पूर्णिमा को सोमवार के दिन ठहरता है। बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन है कि "गणना करने से संवत् १४५५ में जेष्ठ शुक्ल पूर्णिमा चंद्रवार को नहीं पड़ती। पद्य को ध्यान से पढ़ने पर संवत् १४५६ निकलता है क्योंकि उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा है "चौदह सौ पचपन साल गए' अर्थात् उस समय तक संवत् १४५५ बीत गया था।[1] गणना से संवत् १४५६ में चन्द्रवार को ही ज्येष्ठ पूर्णिमा पड़ती है। अतएव इस दोहे के अनुसार कबीर का जन्म संवत् १४५६ की जेष्ठ पूर्णिमा को हुआ।"

किंतु गणना करने पर ज्ञात होता है कि चन्द्रवार को जेष्ठ पूर्णिमा नहीं पड़ती। चन्द्रवार के बदले मंगलवार दिन आता है।[2] इस प्रकार बाबू श्यामसुन्दरदास का कथन प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। कबीर के जन्म के संबंध में उपर्युक्त दोहे में 'बरसायत' पर भी ध्यान नहीं दिया गया है।

भारत पथिक कबीरपंथी स्वामी श्री युगलानंद ने 'बरसायत' पर एक नोट लिखा है :—

"बरसायत अपभ्रंश है वटसावित्री का। यह वटसावित्री व्रत जेष्ठ के अमावस्या को होती है इसकी विस्तार-पूर्वक कथा महाभारत में है। उसी दिन कबीर साहब नीमा और नूरी को मिले थे। इस कारण से कबीरपंथियों में बरसाइत महातम ग्रंथ की कथा प्रचलित है। और उसी दिन कबीरपंथी लोग बहुत उत्सव मनाते हैं।"[3]

---

[1] कबीर-ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृष्ठ १८

[2] Indian Chronology—Part I, Pillai.

[3] अनुराग सागर (कबीर-सागर नं० २) पृष्ठ ८६, भारत पथिक कबीरपंथी स्वामी श्री युगलानंद द्वारा संशोधित सं १९६२ (श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई)

यह नोट श्री युगलानंद जी ने अनुराग सागर में वर्णित "कबीर साहेब का काशी में प्रकट होकर नीरू को मिलने की कथा" के आधार पर लिखा है। उस कथा की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

यह विधि कछुक दिवस चलि गयऊ। तजि तन जन्म बहुरि तिन पयऊ।
मानुष तन जुलहा कुल दीन्हा। दोउ संयोग बहुरि बिधि कीन्हा॥
काशी नगर रहे पुनि सोई। नीरू नाम जुलाहा होई।
नारि गवन लाव मग सोई। जेठ मास बरसाइत होई॥

आदि

इस पद और टिप्पणी के आधार पर कबीर का जन्म जेठ की 'बरसाइत' (अमावस्या) को हुआ। अब यह देखना है कि जेठ की अमावस्या को चंद्रवार पड़ता है या नहीं। यदि अमावस्या को चंद्रवार पड़ता है तब तो कबीर का जन्म संवत् १४५५ ही मानना होगा और 'गए' का अर्थ १४५५ के 'व्यतीत होते हुए' मानना होगा। ऐसी स्थिति में दोहे का परवर्ती भाग "पूरनमासी प्रगट भये" भी अशुद्ध माना जावेगा क्योंकि 'बरसाइत' पूर्णमासी को नहीं पड़ती, वह अमावस्या को पड़ती है।

मोहनसिंह ने अपनी पुस्तक 'कबीर—हिज़ बायोग्रेफ़ी' में इस किंवदंती के दोहे का उल्लेख किया है। वे हिन्दी में हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज (सन् १६०२, पृष्ठ ५) का उल्लेख करते हुए सं० १४५५ (सन् १३६८) की पुष्टि करते हैं।[२]

---

[१] वही, पृष्ठ ८६

[२] In a Hindi book Bharat Bhramana which has recently been published, the following verses are quoted in proof of the time when Kabir was born and when he died.

चौदह सौ पचपन साल गिरा चंदु एक ठाट हुए।
जेठ सुदी बरसाइत को पूरनमासी तिथि भए॥
संवत पंद्रह सौ अरु पाच मगहर कियो गमन।
अगहन सुदी एकादसी, मिले पवन में पवन॥

मोहनसिंह के द्वारा दिए हुए नोट में 'गए' स्थान पर 'गिरा' है। ठीक नहीं कहा जा सकता कि 'गए' अथवा 'गिरा' शब्द में से कौन सा शब्द ठीक है। लिखने में 'ए' और 'रा' में बहुत साम्य है। यदि 'गए' शब्द 'गिरा' से बन गया है तब तो १४५५ के बीत जाने (गए) की बात ही नहीं उठती। 'गिरा' 'पड़ने' के अर्थ में माना जायगा। अर्थात् सं० १४५५ की साल 'पड़ने' पर। किंतु यहाँ भी 'बरसाइत' और 'पूरनमासी' की प्रतिद्वंद्विता है।

इस दोहे की प्रामाणिकता के विषय में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसके लेखक का भी विश्वस्त रूप से पता नहीं। कबीर ग्रंथावली के संपादक ने अपनी प्रस्तावना में लिखा है :—

"यह पद्य कबीरदास के प्रधान शिष्य और उत्तराधिकारी धर्मदास का कहा हुआ बताया जाता है।"[1] किंतु विद्वान संपादक के इस कथन में प्रामाणिकता नहीं पाई जाती। "कहा हुआ। बताया जाता है" कथन ही संदेहास्पद है। अतएव हम अपना कथन 'अनुराग-सागर' के आधार पर ही स्थिर करना चाहते हैं जिसमें केवल यही लिखा है :—

नारि गवन आव सग सोई। जेठ मास बरसाइत दोई॥[2]

'बील' अपनी ओरिएंटल बायोग्रेफ़िकल डिक्शनरी'[3] में कबीर का जन्म सन् १४९० (संवत् १५४७) स्थिर करते हैं और उन्हें सिकंदर लोदी का समकालीन मानते हैं। डाक्टर हंटर अपने ग्रंथ इंडियन एंपायर के आठवें अध्याय में कबीर का समय सन् १३०० से १४२० तक (संवत् १३५७ से १४७७) मानते हैं। बील और हंटर अपने अनुमान में १९० वर्ष का अंतर

This would then, fix the birth of Kabir in 1398 and his death in A. D. 1448. (R. S. H. M. 1902, page 5)

Kabir—His Biography by Mohan Singh, page 19, foot note.

[1] कबीर ग्रंथावली-प्रस्तावना, पृष्ठ १८

[2] अनुराग सागर, पृष्ठ ८६

3An Oriental Biographical Dictonery—Thomas William Beale. London (1894) Page 204.

रखते हैं। जान ब्रिग्स सिकंदर लोदी का समय सन् १४८८ से १५१७ (संवत् १५४५—१५७४) मानते हैं। उनके कथनानुसार सिकंदर लोदी ने २८ वर्ष ५ महीने राज्य किया।[1] जान ब्रिग्स ने अपना ग्रंथ मुसलमान इतिहासकारों के हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर लिखा है, अतएव उनके काल-निर्णय के संबंध में शंका नहीं हो सकती। यदि वील के अनुसार हम कबीर का जन्म सन् १४९० में अर्थात् सिकंदर लोदी के शासक होने के दो वर्ष बाद मानें तो सिकंदर लोदी की मृत्यु तक कबीर केवल २६ वर्ष के होंगे। किंतु मृत्यु के बहुत पहले ही सिकंदर लोदी कबीर के संपर्क में आ गया था। यह समय भी निश्चित करना आवश्यक है।

श्री भक्तमाल सटीक[2] में प्रियादास की टीका में एक घनाक्षरी है जिसके अनुसार कबीर और सिकंदर लोदी का साक्ष्य हुआ था। वह घनाक्षरी इस प्रकार है :—

देखि कै प्रभाव, फेरि उपज्यो अभाव द्विज;
आयो पातसाह सो सिकंदर सुनाँव है।
विमुख समूह संग माता हूँ मिलाय लई,
जाय कै पुकारे "जू दुखायो सब गाँव है॥"
ल्यावो रे पकर वाको देखौं मैं मकर कैसो,
अकर मिटाऊँ गाढ़े जकर तनाव है।
आनि ठाढ़े किये, काज़ी कहत सलाम करौ,
जानै न सलाम, जानैं राम गाढ़े पाँच है॥

इस घनाक्षरी के नीचे सीतारामशरण भगवानप्रसाद का एक नोट है :—

'यह प्रभाव देख करके ब्राह्मणों के हृदय में पुनः मत्सर उत्पन्न हुआ। वे सब काशीराज को भी श्री कबीर जी के वश में जान कर, बादशाह

---

[1] History of the Rise of the Mohammedan Power in India—By John Briggs, page 589.

[2] भक्तमाल सटीक—सीतारामशरण भगवानप्रसाद
प्रथम बार, लखनऊ (सन् १९१३)

सिकंदर लोदी के पास जो आगरे से काशी जी आया था पहुँचे । श्री कबीर जी की मा को भी मिला के साथ में ले के मुसलमानों सहित बादशाह की कचहरी में जाकर उन सब ने पुकारा कि कबीर शहर भर में उपद्रव मचा रहा है......आदि"[1]

इससे ज्ञात होता है कि जब सिकंदर लोदी आगरे से काशी आया, उस समय वह कबीर से मिला । इतिहास से ज्ञात होता है कि सिकंदर लोदी विहार के हुसेनशाह शरकी से युद्ध करने के लिए आगरे से काशी आया था । जान ब्रिग्स के अनुसार यह घटना हिजरी ९०० [अर्थात् सन् १४९४] की है ।[2]

यदि कबीर सन् १४९४ में सिकंदर लोदी से मिले होंगे तो वे उस समय बील के अनुसार केवल ४ वर्ष के होंगे । उस समय उनका इतनी प्रसिद्धि पाना कि वे सिकंदर लोदी की अप्रसन्नता के पात्र बन सके, संपूर्णतया असंभव है । अतएव बील के द्वारा दी हुई तिथि भ्रमात्मक है ।

व्ही० ए० स्मिथ ने कबीर की कोई निश्चित तिथि नहीं दी । वे अंडरहिल द्वारा दी हुई तिथि का उल्लेख मात्र करते हैं ।[3] वह तिथि है सन्

---

[1] भक्तमाल, पृष्ठ ४७०

[2] Hoossin Shah Shurky accordingly put his army in motion, and marched against the King. Sikander on hearing of his intentions, crossed the Ganges to meet him; and the two armies came in sight of each other at the spot distant 18 coss (27 miles) from Benares.

History of the Rise of the Mohammedan power in India by John Briggs. M. R. A. S. London (1929) Page 571-72.

[3] Miss underhill dates Kabir from about 1440 to 1518. He used to be placed between 1380 and 1420.

The Oxford History of India by V. A. Smith Page 261 (foot note)

१४४० से १५१८ (अर्थात् संवत् १४९७ से १५७५)। यह समय सिकंदर लोदी का समय है और कबीर का इस समय रहना प्रामाणिक है।

अतः कबीर की जन्म-तिथि किसी ने भी निश्चित प्रकार से नहीं दी। बाबू श्यामसुन्दरदास के अनुसार प्रचलित दोहे के आधार पर जेठ पूर्णिमा, चंद्रवार संवत् १४५६ और अनुराग सागर के आधार पर जेठ अमावस्या संवत् १४५५ कबीर की जन्म-तिथि है। जेठ पूर्णिमा संवत् १४५६ को चन्द्रवार न ीं पड़ता अतएव यह तिथि अनिश्चित है। ऐसी परिस्थिति में हम कबीर की जन्म-तिथि जेठ अमावस्या संवत् १४५५ ही मानते हैं। कबीर-पंथियों में भी जेठ बरसाइत सं० १४५५ मान्य है जो अनुराग सागर द्वारा स्पष्ट की गई है।

कबीर की मृत्यु की तिथि भी संदिग्ध ही है।

इस सम्बन्ध में भक्तमाल में यह दोहा है:—

> पंद्रह सौ उनचास में, मगहर कीन्हों गौन।
> अगहन सुदि एकादसी, मिले पौन में पौन ॥[1]

इसके अनुसार कबीर की मृत्यु सं० १५४९ में हुई। कबीरपंथियों में प्रचलित दोहे के अनुसार यह तिथि सं० १५७५ कही गई है:—

> संबत पंद्रह सै पछत्तरा, कियो मगहर को गौन।
> माघ सुदी एकादशी रलो पौन में पौन ॥[2]

सिकंदर लोदी सन् १४९४ (संवत् १५५१) में कबीर से मिला था।[3] अतएव भक्तमाल के दोहे के अनुसार कबीर की मृत्यु-तिथि अशुद्ध है। कबीर की मृत्यु संवत् १५५१ के बाद ही मानी जानी चाहिए। डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी के अनुसार कबीर का सिकंदर लोदी से मिलना चिंत्य है। उनका समय चौदहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में ही मानना समीचीन है। वे लिखते हैं:—

---

[1] भक्तमाल सटीक, पृष्ठ ४७४

[2] कबीर कसौटी

[3] History of the Rise of the Mohammedan Power in India by John Briggs page 571—72

"कबीर का समय चौदहवीं शताब्दी का उत्तरकाल और संभवतः पंद्रहवीं शताब्दी का पूर्वकाल मानना अधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है। सिकंदर लोदी के समय में उनका होना सर्वथा संदिग्ध है। केवल जनश्रुतियों के आधार पर ही ऐतिहासिक तथ्य स्थिर नहीं हो सकता।"[1]

नागरी प्रचारिणी सभा से कबीर-ग्रंथावली का संपादन सं० १५६१ की हस्तलिखित प्रति के आधार पर किया गया है।[2] इस प्रति में वे बहुत से पद और साखियाँ नहीं हैं जो ग्रंथ साहब में संकलित हैं। इस संबंध में बाबू श्यामसुन्दरदास जी का कथन है :—"इससे यह मानना पड़ेगा कि या तो यह संवत् १५६१ वाली प्रति अधूरी है अथवा इस प्रति के लिखे जाने के १०० वर्ष के अंदर बहुत सी साखियाँ आदि कबीरदास जी के नाम से प्रचलित हो गई थीं, जो कि वास्तव में उनकी न थीं। यदि कबीरदास का निधन संवत् १५७५ में मान लिया जाता है तो यह बात असंगत नहीं जान पड़ती कि इस प्रति के लिखे जाने के अनंतर १४ वर्ष तक कबीरदास जी जीवित रहे और इस बीच में उन्होंने और बहुत से पद बनाए हों जो ग्रंथसाहब में संम्मिलित कर लिए गए हों।"[3]

बाबू साहब का यह मत समीचीन जान पड़ता है। कबीरपंथियों के विचार से साम्य रखने के कारण मृत्यु-तिथि सं० १५७५ ही मान्य है। इस प्रकार कबीर की जन्म-तिथि सं० १४५५ और मृत्यु-तिथि सं० १५७५ ठहरती है। इसके अनुसार वे १२० वर्ष तक जीवित रहे।

कबीर की जाति में भी अभी तक संदेह है। कबीरपंथी तो उन्हें जाति से परे मानते हैं।[4] किंतु किंवदंती है कि वे एक ब्राह्मणी विधवा के पुत्र थे। विधवा-कन्या का पिता श्री रामानंद का बड़ा भक्त था। एक बार श्री रामानंद उस विधवा कन्या के प्रणाम करने पर उसे 'पुत्रवती' होने का आशीर्वाद दे बैठे। ब्राह्मण ने जब अपनी कन्या के विधवा होने की बात कही तब भी

---

[1] कबीर का समय—हिंदुस्तानी; पृष्ठ २१५, भाग २, अङ्क २।

[2] कबीर ग्रंथावली, भूमिका पृष्ठ २।

[3] वही पृष्ठ २१।

[4] है अनाम अविचल अविनाशी, अकह पुरुष सतलोक के वासी ॥
—श्री कबीर साहब का जीवन-चरित्र (श्री जनकलाल) नरसिंहपुर (१६०५)

रामानंद ने अपना वचन नहीं लौटाया। आशीर्वाद के फल-स्वरूप उस विधवा-कन्या के एक पुत्र हुआ जिसे उसने लोकलाज के डर से लहरतारा तालाव के किनारे छिपा दिया। कुछ देर बाद उसी रास्ते से नीरू जुलाहा अपनी नव-विवाहिता स्त्री नीमा को लेकर जा रहा था। नवजात शिशु का सौंदर्य देखकर उन्होंने उसे उठा लिया और उसका अपने पुत्र के समान पालन किया, इसीलिए कबीर जुलाहे कहलाए, यद्यपि वे एक ब्राह्मणी विधवा के पुत्र थे।

महाराज रघुराजसिंह की "भक्तमाला रामरसिकावली" में भी इस घटना का उल्लेख है पर कथा में थोड़ा सा अंतर आ गया है।[1] कुछ कबीरपंथियों का मत है कि कबीर ब्राह्मण की विधवा-कन्या के पुत्र नहीं थे, वरन् रामानन्द के आशीर्वाद के फल-स्वरूप वे उसकी हथेली से उत्पन्न हुए थे, इसीलिए वे करवीर (हाथ के पुत्र) अथवा (करवीर का अपभ्रंश) 'कबीर' कहलाए। बात जो भी हो, कबीर का जन्म जनश्रुति ब्राह्मण-कन्या से जोड़ती है। किन्तु प्रश्न यह है कि यदि कबीर विधवा की संतान थे तो यह बात लोगों को ज्ञात कैसे हुई? उसने तो कबीर को लहरतारा के समीप छिपा कर रख दिया था। और यदि ब्राह्मण-विधवा को वरदान देने की बात लोग जानते थे तो उस विधवा ने अपने बालक को छिपाने का प्रयत्न ही क्यों

---

[1] रामानंद रहे जब स्वामी। ध्यावत निसदिन अंतरयामी॥
तिनके ढिग विधवा एक नारी। सेवा करै बड़ो अमधारी॥
प्रभु एक दिन रह ध्यान लगाई। विधवा तिय तिनके ढिग आई॥
प्रभुहिं कियो वदन बिन दोषा। प्रभु कह पुत्रवती भरि घोषा॥
तब तिय अपनो नाम बखाना। यह विपरीत दियो वरदाना॥
स्वामी कह्यो निकसि मुख आयो। पुत्रवती हरि तोहिं बनायो॥
ह्वै है पुत्र कलंक न लागी। तव सुत ह्वै है हरि अनुरागी॥
तब तिय-कर फुलका परि आयो। कछु दिन में ताते सुत जायो॥
जनत पुत्र नभ बजे नगारा। तदपि जननि उर सोच अपारा॥
सो सुत लै तिय फेंक्यो दूरी। कढ़ी जुलाहिन तहँ एक रूरी॥
सो बालकहिं अनाथ निहारी। गोद राखि निज भवन सिधारी॥
लालन पालन, किय बहु भाँती। सेयो सुतहिं नारि दिन राती॥
—भक्तमाला रामरसिकावली

किया ? रामानन्द के आशीर्वाद से तो कलंक-कालिमा की आशंका भी नहीं हो सकती थी। इस प्रकार कबीर की यह कलंक-कथा निर्मूल सिद्ध होती है। इस कथा के उद्गम के तीन कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि इससे रामानंद के प्रभुत्व का प्रचार होता है। वे इतने प्रभावशाली थे कि अपने आशीर्वाद से एक विधवा-कन्या के उदर से पुत्रोत्पत्ति कर सकते थे। दूसरा कारण यह हो सकता है कि कबीर के पंथ में बहुत से हिन्दू भी संमिलित थे। अपने गुरु को जुलाहा की हीन और नीच जाति से हटा कर वे उनका संबंध पवित्र ब्राह्मण जाति से जोड़ना चाहते थे। और तीसरा कारण यह है कि कुछ कट्टर हिन्दू और मुसलमान जो कबीर की धार्मिक उच्छृंखलता से क्षुब्ध थे वे उन्हें अपमानित और कलंकित करने के लिए उनके जन्म का संबंध इस कलंक कथा से घोषित करना चाहते थे।

कबीर के जन्म-संबंध में प्राप्त हुए कुछ प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि वे ब्राह्मण-विधवा की संतान न होकर मुसलमानी कुल में ही पैदा हुए थे। सब से अधिक प्रामाणिक उद्धरण हमें आदि श्री गुरुग्रंथ साहब में मिलता है। उक्त ग्रंथ में श्री रैदास के जो पद संग्रहीत हैं, उसमें एक पद इस प्रकार है:—

मलारबाणीभगतरविदासजी की

१ओसतिगुरप्रसाद ॥..........॥ ३ ॥ १ ॥

मलार ॥ हरिजपततेऊजनांपदमकवलासपतितासमतुलिनहींआनकोऊ ॥ एकहीएकअनेकअनेककहोइबिसथरिओआनरेआनभरपूरिसोऊ ॥ रहाउ ॥ जाकैभागवतुलेखीऐअवरुनहीपेखीऐतासकीजातिआछोपछीपा। बिआसमहिलेखीऐसनकमहिपेखीऐनामकीनाममनासपतदीपा ॥१॥

मलार बाणी भगत रविदास जी की

१ ओ सतगुरु प्रसादि ॥.............. ......॥३॥१॥

मलार ॥ हरि जपत तेऊ जनां पदम कवलासपति ता सम तुलि नहीं आन कोऊ। एक ही एक अनेक अनेक होइ बिसथरिओआनरे आन भरपूरि सोऊ ॥ रहाउ ॥ जाके भगवतु लेखीऐ अवरु नहीं पेखीऐ तास की जाति आछोप छीपा ॥ बियास यहि लेखिऐ सनक महि पेखीऐ नाम की नामना सपत दीपा ॥१॥ जाकै ईदि बकरीदि कुल गऊ रे बधु करहि मानीअहि सेख सहीद पीरा ॥ जाकै बाप वैसी करी पूत ऐसी सरी तिहू रे लोक परसिध कबीरा ॥२॥

जाकैंईदिबकरीदिकुलगऊरेबधुकरहिमानीअहिसेखसहीदपीरा ॥ जाकै बापवैसीकरीपूतऐसीसरीतिहूरेलोकपरसिधकबीरा ।२॥ जाकेकुटुम्बकेढेढसभ ढोरढोवतफिरहिअजहुँबनारसीआसपासा । आचारसहित विप्रकरहिडंडउति- तिनितनैरविदासदासानुदासा ॥३॥ ॥२॥

रैदास के इस पद में नामदेव, कबीर और स्वयं रैदास का परिचय दिया गया है। नामदेव छीपा (दर्जी) जाति थे। कबीर जाति के मुसलमान थे जिनके कुल में ईद बकरीद के दिन गऊ का वध होता था जो शेख शहीद और पीर को मानते थे। उन्होंने अपने बाप के विपरीत आचरण करके भी तीनों लोकों में यश की प्राप्ति की। रैदास चमार जाति के थे जिनके वंश में मरे हुए पशु ढोए जाते हैं और जो बनारस के निवासी थे।

आदि श्री गुरुग्रंथ के इस पद के अनुसार कबीर निश्चय ही मुसलमान वंश में उत्पन्न हुए थे। आदि ग्रंथ का संपादन संवत् १६६१ में हुआ था। सिक्खों का धार्मिक ग्रंथ होने के कारण इसके पाठ में अणुमात्र भी अंतर नहीं हुआ। निर्देशित आदि श्री गुरुग्रंथ साहिब गुरुमुखी में लिखे हुए इसी ग्रंथ की अविकल प्रति है।[1] इस प्रकार यह प्रति और उसका पाठ

जाके कुटुंब के ढेढ़ सभ ढोर ढोवत फिरहि अजहुँ बनारसी आसपासा॥ अचार सहित विप्र करहि डंडउति तिनि तनै रविदास दासानुदासा ॥३॥२॥

—आदि श्री गुरुग्रंथ साहिब जी, पृष्ठ ६६८

भाई मोहनसिंह वैद्य, तरनतारन (अमृतसर)

१७ अगस्त १६२७, बुधवार

[1] इस दशा और त्रुटि को देखते हुए श्री सतगुरु जी की प्रेरना से यदि सेवा करने का उतसाह दास को हुआ और आदि में भेटा भी अती अलप लागत से भी बहुत कम रखने का द्रिढ़ विचार और ऐसा ही वरताव कीया गया। फिर यहि विचार हुआ कि शब्द के स्थान शब्द तथा और हिंदी शब्द या पद हिंदी की लेखन प्रणाली के अनुसार लिखे जावें या यथातथ्य गुरुमुखी के अनुसार ही लिखे जावें? इस पर बहुत विचार करने से यही निश्चय हुआ कि महान पुरुषों की तर्फ़ से जो अक्षरों के जोड़ तोड़ मंत्र रूप दिव्य वाणी में हुआ करते हैं उनके मिलाप में कोई अमोघ शक्ती होती है जिसको सर्व साधारण हम लोग नहीं समझ सकते। परंतु उनके पठन पाठन में यथातथ्य

अत्यंत प्रामाणिक है। इस प्रमाण का आधार श्री मोहनसिंह ने भी कबीर की जाति के निर्णय करने में लिखा है।[1]

दूसरा प्रमाण सद्गुरु गरीबदासजी साहिब की वाणी[2] से प्राप्त होत है। इसमें 'पारख का अंग, ॥५२॥ के अन्तर्गत कबीर साहब का जीवन-चरित्र दिया हुआ है। प्रारम्भ में ही लिखा हुआ है:—

गरीब सेवक होय करि ऊतरे
इस पृथिवी के मांहि
जीव उधारन जगत गुरु बार बार बलि जांहि ॥३८०॥
गरीब काशी पुरी कस्त किया, उतरे अधर उधार।
मोमत को मुजरा हुआ, जङ्गल मैं दीदार ॥३८१॥
गरीब कोटि किरण शशि भान सुधि, आसन अधर बिमान।
परसत पूरण ब्रह्म कूं, शीतल पिंडरु प्राण ॥३८२॥
गरीब गोद लिया मुख चूंबि करि, हेम रूप झलकंत।
जगर मगर काया करै, दमकैं पदम अनंत ॥३८३॥
गरीब काशी उमटी गुल भया, मो मन का बर वेर।
कोई कहै ब्रह्म विष्णु हैं, कोई कहै इंद्र कुबेर[3] ॥३८४॥

उच्चारन से ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसके सिवाय यह भी है कि श्री गुरुग्रन्थ साहिब जी के प्रतिशत ८० शब्द ऐसे हैं जो हिन्दी पाठक ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इस विचार अनुसार ही यह हिन्दी बीड़ गुरमुखी लिखित अनुसार ही रखी गई है अर्थात् केवल गुरमुखी से अक्षरों के स्थान हिन्दी (देवनागरी) अक्षर ही किये गये हैं—

वही ग्रन्थ, प्रकाशक की विनय, पृष्ठ १

[1] Kabir—His Biography, By Mohan Singh, Pub. Atma Ram and Sons, Lahore 1934

[2] श्री सद्गुरु गरीबदास जी साहिब की वाणी
संपादक अजरानन्द गरीबदासी रमताराम
आर्य सुधारक छापाखाना, बड़ोदा

[3] वही ग्रन्थ, पृष्ठ १३६

इस उद्धरण से यह ज्ञात होता है कि कबीर ने काशी में सीधे मुसलमान (मोमिन) ही को दर्शन देकर उसके घर में जन्म ग्रहण किया। और मोमिन ने शिशु कबीर का मुँह चूम कर उसके अलौकिक रूप के दर्शन किये। इस अवतरण से भी कबीर की ब्राह्मणी विधवा से उत्पन्न होने की किंवदंती ग़लत हो जाती है। सद्गुरु गरीबदासजी साहिब की वाणी भी प्रामाणिक ग्रंथ माना जाना चाहिए क्योंकि वह संवत् १८६० की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रकाशित की गई है।[1]

इन दो प्रमाणों से कबीर का मुसलमान होना स्पष्ट है। इन्होंने अपनी जुलाहा जाति का परिचय भी स्पष्ट रूप से अनेक स्थानों पर दिया है:—

१ तननां बुननां तज्या कबीर, रामं नामं लिखि लिया सरीर ॥[2]
२ जुलाहे तनि बुनि पाँन न पावल, फारि बुनी दस ठांईं हो ॥[3]
३ जाति जुलाहा मति कौ धीर,
हरषि हरषि गुण रमै कबीर ॥[4]
४ तूं—ब्राँह्मण मैं कासी का जुलाहा,
चीन्हि न मोर गियाना।[5]

---

[1]यह ग्रंथ साहिब हस्तलिखित विक्रम संवत् १८६० मित्ती वैसाख मास का लिखा हुवा मेरे को मुकाम पिलाणा जिल्ला रोहतक में मिला हुआ जैसा का तैसा छापा है जिसको असल लिखा हुआ ग्रन्थ साहिब देखना हो वह बड़ोदे में श्री जुम्मादादा व्यायाम शाला प्रो० माणेकराव के यहाँ कायम के लिये, रखा गया है सो सब वहाँ से देख सकते हैं:—

अजरानन्द गरीबदासी
—वाणी की प्रस्तावना

[2]कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा) इं० प्रेस० प्रयाग १९२८, पृष्ठ ६९

३	वही	पृष्ठ	१०४
४	,,	,,	१२८
५	,,	,,	१७३

५ जाति जुलाहा नाँम कबीरा,
बनि बनि फिरौं उदासी।[1]

६ कहत कबीर मोहि भगत उमाहा,
कृत करणीं जाति भया जुलाहा॥[2]

७ ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै,
यूं ढुरि मिल्या जुलाहा॥[3]

८ गुरु प्रसाद साध की संगति,
जग जीतैं जाइ जुलाहा॥[4]

कबीर के छठे उद्धरण से तो यही ध्वनि निकलती है कि पूर्व कर्मानुसार ही उन्हें जुलाहे के कुल में जन्म मिला। "भया" शब्द इस अर्थ का पोषक है।

कबीर बचपन से ही धर्म की ओर आकर्षित थे। वे भजन गाया करते थे और लोगों को उपदेश दिया करते थे पर 'निगुरा' (बिना गुरु के) होने के कारण लोगों में आदर के पात्र नहीं थे और उनके भजनों अथवा उपदेशों को भी कोई सुनना पसंद नहीं करता था। इस कारण वे अपना गुरु खोजने की चिंता में व्यस्त हुए। उस समय काशी में रामानंद की बड़ी प्रसिद्ध थी। कबीर उन्हीं के पास गए पर कबीर के मुसलमान होने के कारण उन्होंने उन्हें अपना शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया। वे हताश तो बहुत हुए पर उन्होंने एक चाल सोची। प्रातःकाल अँधेरे ही में रामानंद पंचगंगा घाट पर नित्य स्नान करने के लिए जाते थे। कबीर पहले से ही उनके रास्ते में घाट की सीढ़ियों पर लेट रहे। रामानंद जैसे ही स्नानार्थ आए वैसे ही उनके पैर की ठोकर कबीर के सिर में लगी। ठोकर लगने के साथ ही रामानंद के मुख से पश्चाताप के रूप में 'राम' 'राम' शब्द निकल पड़ा। कबीर ने उसी समय उनके चरण पकड़ कर कहा कि महाराज, आज से आपने मुझे राम नाम से दीक्षित कर अपना शिष्य बना लिया। आज से आप मेरे गुरु हुए। रामानंद ने प्रसन्न हो कबीर को हृदय से लगा लिया। इसी समय से कबीर रामानंद के शिष्य

---

[1] कबीर ग्रंथावली (ना० प्र० स०), इं० प्र०, प्रयाग १६२८, पृ० १८१
[2] वही पृष्ठ १८१
[3] " " २२१
[4] " " "

कहलाने लगे। बाबू श्यामसुन्दरदास ने अपनी पुस्तक कबीर ग्रंथावली में लिखा है :—

केवल किंवदंती के आधार पर रामानन्द को उनका गुरु मान लेना ठीक नहीं। यह किंवदंती भीऐतिहासिक जाँच के सामने ठीक नहीं ठहरती। रामानन्द जी की मृत्यु अधिक से अधिक देर में मानने से संवत् १४६७ में हुई, इससे १४ या १५ वर्ष पहले भी उसके होने का प्रमाण विद्यमान है। उस समय कबीर की अवस्था ११ वर्ष की रही होगी, क्योंकि हम ऊपर उनका जन्म १४५६ सिद्ध कर आए हैं। ११ वर्ष के बालक का घूम फिर कर उपदेश देने लगना सहसा ग्राह्य नहीं होता। और यदि रामानंद जी की मृत्यु संवत् १४५२-५३ के लगभग हुई तो यह किंवदंती झूठ ठहरती है; क्योंकि उस समय तो कबीर को संसार में आने के लिए अभी तीन चार वर्ष रहे होंगे।"[1]

बाबू साहब ने यह नहीं लिखा कि रामानंद की मृत्यु की तिथि उन्होंने कि प्रामाणिक स्थान से ली है। नाभादास के भक्तमाल की टीका करनेवाले प्रियादास के अनुसार रामानंद की मृत्यु सं० १५०५ विक्रमी में हुई इसके अनुसार रामानंद की मृत्यु के समय कबीर की अवस्था ४६ वर्ष की रही होगी। उस अवस्था में या उसके पहले कबीर क्या कोई भी भक्त घूम-फिर कर उपदेश दे सकता है और रामानंद का शिष्य बन सकता है। फिर कबीर ने लिखा है :—

काशी में हम प्रगट भये हैं रामानंद चिताए।

(कबीर परिचय)

कुछ विद्वानों का मत है कि शेख़ तक़ी कबीर के गुरु थे।[2]
पर जिस गुरु को कबीर ईश्वर से भी बड़ा मानते थे उस गुरु शेख़ तक़ी के लिए ऐसा वे नहीं कह सकते थे :—

घट घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख

(कबीर परिचय)

हाँ, यह अवश्य हो सकता है कि वे शेख़ तक़ी के सत्संग में रहे हों और उनसे उनका पारस्परिक व्यवहार हो!

---

[1] कबीर ग्रंथावली, भूमिका पृष्ठ २५।

[2] Kabir and the Kabir Panth, by Westcott, page 25

कबीर का विवाह हुआ था अथवा नहीं, यह संदेहात्मक है। कहते हैं कि उनकी स्त्री का नाम लोई था। वह एक बनखंडी बैरागी की कन्या थी। उसके घर पर एक रोज़ संतों का समागम था। कबीर भी वहाँ थे। सब संतों को दूध पीने को दिया गया। सबने तो पा लिया, कबीर ने अपना दूध रक्खा रहने दिया। पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया कि एक संत आ रहा है, उसके लिए यह दूध रख दिया गया है। कुछ देर में संत उसी कुटी पर पहुँचा। सब लोग कबीर की शक्ति पर मुग्ध हो गये। लोई तो भक्ति से इतनी विह्वल हो गई कि वह इनके साथ रहने लगी। कोई लोई को कबीर की स्त्री कहते हैं, कोई शिष्या। कबीर ने निस्संदेह लोई को संबोधित कर पद लिखे हैं। उदाहरणार्थ :—

कहत कबीर सुनहु रे लोई
हरि बिन राखन हार न कोई।

(कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ ११८)

संभव है, लोई उनकी स्त्री हो पीछे संत-स्वभाव से उन्होंने उसे शिष्या बना लिया हो। उन्होंने अपने गार्हस्थ-जीवन के विषय में भी लिखा है :—

नारी तो हम भी करी, पाया नहीं विचार
जब जानी तब परिहरी नारी बड़ा विकार।

(सत्य कबीर की साखी, पृष्ठ १३२)

कहते हैं, लोई से इन्हें दो संतान थीं। एक पुत्र था कमाल, और दूसरी पुत्री थी कमाली। जिस समय ये अपने उपदेशों से प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे थे उस समय सिकंदर लोदी तख्त पर बैठा था। उसने कबीर के अलौकिक कृत्यों की कहानी सुनी। उसने कबीर को बुलाया और जब उसने कबीर को स्वयं अपने को ईश्वर कहते पाया तो क्रोध में आकर उन्हें आग में फेंका, पर वे साफ बच गये, तलवार से काटना चाहा पर तलवार उनका शरीर बिना काटे ही उनके भीतर से निकल गई। तोप से मारना चाहा पर तोप में जल भर गया। हाथी से चिराना चाहा पर हाथी डर कर भाग गया।

ऐसे अलौकिक कृत्यों में कहाँ तक सत्यता है, यह संभवतः कोई विश्वास न करे पर महात्मा या संतों के साथ ऐसी कथाओं का जोड़ना आश्चर्य-जनक नहीं है।

मृत्यु के समय कबीर काशी से मगहर चले आए थे। उन्होंने लिखा है :—

सकल जनम शिवपुरी गँवाया
मरति बार मगहर उठि धाया।

(कबीर परिचय)

यह विश्वास है कि काशी में मरने से मोक्ष मिलता है, मगहर में मरने से गधे का जन्म। पर कबीर ने कहा :—

जौ काशी तन तजै कबीरा
तौ रामहि कौन निहोरा।

(कबीर परिचय)

वे तो यह चाहते थे कि यदि मैं सच्चा भक्त हूँ तो चाहे काशी में मरूँ चाहे मगहर में, मुझे मुक्ति मिलनी चाहिए। यही विचार कर वे मगहर चले गए। उनके मरने के समय हिंदू मुसलमानों में उनके शव के लिए झगड़ा उठा। हिंदू दाह-कर्म करना चाहते थे और मुसलमान गाड़ना चाहते थे। कफन उठाने पर शव के स्थान-पर फूल-राशि दिखलाई पड़ी जिसे हिंदू मुसलमानों ने सरलता से अर्ध भागों में विभाजित कर लिया। हिंदू और मुसलमान दोनों संतुष्ट हो गये।

कविता की भांति कबीर का जीवन भी रहस्य से परिपूर्ण है।

कबीर की कविता से संबंध रखनेवाले हठयोग और सूफ़ीमत में प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्दों के अर्थ :—

(अ) हठयोग

१—अवधू

यह अवधूत का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ है, जो संसार से वैराग्य लेकर संसार के बंधन से अपने को अलग कर लेता है।

यो विलंध्याश्रमान् वर्णान् आत्मंयेव स्थितः प्रमान।
अति वर्णाश्रमी योगी अवधूतः स उच्यते॥

ऐसा भी कहा जाता है कि यह नाम रामानंद ने अपने अनुयायियों और भक्तों को दे रक्खा था क्योंकि उन्होंने रामानुजाचार्य के कर्मकांडों की उपेक्षा कर दी थी।

२—अमृत

ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्र-दल-कमल के मध्य में एक योनि है। उसका मुख नीचे की ओर है। उसके मध्य में चंद्राकार स्थान है जिससे सदैव अमृत का प्रवाह होता है। यह इडा नाड़ी द्वारा बहता है और मनुष्य को दीर्घायु बनाने में सहायक होता है। जो प्राणायाम के साधनों से अनभिज्ञ हैं, उनका अमृत-प्रवाह मूलाधार-चक्र में स्थित सूर्य द्वारा शोषण कर लिया जाता है। इसी अमृत के नष्ट होने से शरीर वृद्ध बनता है। यदि अभ्यासी इस अमृत का प्रवाह कंठ को बंद कर रोक ले तो उसका उपयोग शरीर की वृद्धि ही में होगा। उसी अमृत-पान से वह अपने शरीर को जीवन की शक्तियों से पूर्ण कर लेगा और यदि तक्षक भी उसे काट ले तो उसके शरीर में विष का संचार न होगा।

३—अनाहद

योगी जब समाधिस्थ होता है तो उसके शून्य अथवा आकाश (ब्रह्मरंध्र के समीप के वातावरण) में एक प्रकार का संगीत होता है जिससे वह मस्त होकर ईश्वर की ओर ध्यान लगाए रहता है। इस शब्द का शुद्ध रूप अनाहद है। यह ब्रह्मरंध्र में निरंतर होता रहता है।

४—इला (इडा)

मेरुदंड के बाएँ ओर की नाड़ी जिसका अंत नाक के दाहिने ओर होता है।

५—कहार (पाँच)

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ।

आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा।

६—काशी

आज्ञा-चक्र के समीप इडा (गंगा या बरना) और पिंगला (यमुना या असी) के मध्य का स्थान काशी (वाराणसी) कहलाता है। यहाँ विश्वनाथ का निवास है।

इडा हि पिंगला ख्याता वाराणसीति होच्यते
वाराणसी तयोर्मध्ये विश्वनाथोत्र भाषितः।
(शिवसंहिता, पंचम पटल, श्लोक १००)

७—किसान (पंच)

शरीर में स्थित पंच प्राण

उदान, प्रान, समान, अपान और व्यान।

उदान—मस्तिष्क में
प्रान—हृदय में
समान—नाभि में
अपान—गुह्य स्थान में
व्यान—समस्त शरीर में

८—खसम

सत्पुरुष (देखिए माया की विवेचना)

९—गंगा

इड़ा नाड़ी ही गंगा के नाम से पुकारी जाती है। कभी कभी इसे बरना भी कहते हैं। इस नाड़ी से सदैव अमृत का प्रवाह होता है यह आज्ञा चक्र के दाहिने ओर जाती है।

१०—गगन

(शून्य देखिए)

११—घट

शरीर।

१२—चंद

ब्रह्मरंध्र में सहस्र-दल कमल है। उसमें एक योनि है। जिसका मुख नीचे की ओर है। इस योनि के मध्य में एक चंद्राकार स्थान है, जिससे सदैव अमृत प्रवाहित होता है। यही स्थान कबीर ने चंद्र के नाम से पुकारा है।

१३—चरखा

काल-चक्र, (देखिए पृष्ठ २७)

१४—चोर (पंच)

पंच विकार

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद।

१५—जमुना

पिंगला नाड़ी का दूसरा नाम जमुना है। इसे 'असी' भी कहते हैं। यह आज्ञा-चक्र के बाएँ ओर जाती है।

१६—जना (तीन)

तीन गुण —

सत, रज, तम।

१७—तरुवर

मेरुदंड ।

१८—त्रिकुटी

भौंहों के मध्य का स्थान ।

१९—ढाई

पच्चीस प्रकृतियाँ ।

२०—धनुष

(देखिए त्रिकुटी)

२१—नागिनी

मूलाधार-चक्र की योनि के मध्य में विद्युल्लता के आकार की सर्प की भाँति साढ़े तीन वार मुड़ी हुई कुंडलिनी है जो सुषुम्णा नाड़ी के मुख की ओर है। यह सृजनात्मक शक्ति है और इसी के जाग्रत होने से योगी को सिद्धि प्राप्ति होती है ।

२२—पंच जना

अद्वैतवाद के अनुसार विश्व केवल एक तत्त्व में निहित है—उस तत्त्व का नाम है परब्रह्म । सृष्टि करने की दृष्टि से उसका दूसरा नाम है मूल प्रकृति । मूल प्रकृति का प्रथम रूप हुआ आकाश, जिसे अंग्रेजी में ईथर (ether) कहते हैं । आकाश (ईथर) की तरंगों से वायु प्रकट हुई । वायु के संघर्षण से तेज (पावक) उत्पन्न हुआ । तेज के संघर्षण से तरल पदार्थ (जल) उत्पन्न हुआ जो अंत में दृढ़ (पृथ्वी) हो जाता है । इस प्रकार मूल प्रकृति के क्रमशः पाँच रूप हुए जो पंच-तत्त्वों के नाम से कहे जाते हैं :—

आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ।

ये पाँचों तत्त्व क्रमशः फिर मूल प्रकृति में लीन हो सकते हैं । पृथ्वी जल में, जल तेज में, तेज वायु में और वायु फिर आकाश में लीन हो सकता है और फिर अनत सत्ता का एक प्रशांत साम्राज्य हो सकता है । यही अद्वैत-वाद का सार-भूत तत्व है । प्रत्येक तत्व की पाँच प्रकृतियाँ भी हैं । इस प्रकार पाँच तत्व की पच्चीस प्रकृतियाँ हो जाती हैं । वे क्रमशः इस प्रकार हैं:—

आकाश की प्रकृतियाँ—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, अंतःकरण।
वायु " " प्रान, अपान, समान, उदान, व्यान।
तेज " " आँख, नाक, कान, जीभ, त्वचा।
जल " " शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध।
पृथ्वी " " हाथ, पैर, मुख, गुह्य, लिंग।

२३-पिंगला

मेरुदण्ड के दाहिने ओर की नाड़ी। इसके बाएँ ओर होता है।

२४-पवन

प्राणायाम द्वारा शरीर की परिष्कृत वायु।

२५-पनिहारी (पंच)

पाँच गुण—शब्द, स्पर्श रूप, रस, गंध।

२६—बंकनालि

(नागिनी देखिए)

२७—महारस

(अमृत देखिए)

२८ मंदला

(अनाहद देखिए)

२९ षट्चक्र

सुषुम्णा नाड़ी की छः स्थितियाँ छः चक्रों के रूप में हैं। उन चक्र के नाम हैं—

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहद, विशुद्ध और आज्ञा।

मूलाधार चक्र	गुह्य-स्थान के समीप,
स्वाधिष्ठान चक्र	लिंग-स्थान के समीप,
मणिपूरक चक्र	नाभि-स्थान के समीप,
अनाहद चक्र	हृदय-स्थान के समीप,
विशुद्ध चक्र	कंठ-स्थान के समीप और
आज्ञा चक्र	दोनों भौंहों के बीच (त्रिकुटी में)

प्रत्येक चक्र की सिद्धि योगी की दिव्य अनुभूति में सहायक होती है।

३० सुरति

स्मृति का अपभ्रंश है। जिसका अर्थ 'अनुभव की हुई वस्तु का सद्बोध (उस चीज़ को जगाने वाला कारण) सहकार से संस्कार के आधीन ज्ञान विशेष है।' श्री माधव प्रसाद का कथन है कि सुरति 'स्वरत' का रूप है जिसका तात्पर्य है अपने में लीन हो जाना। कुछ विद्वान इसे फ़ारसी के 'सूरत-इ-इलमिया' का रूप वतलाते हैं। कबीर के 'आदि-मंगल' में सुरति का अर्थ आदि ध्वनि से ही लिया जा सकता है जिससे शब्द उत्पन्न हुआ है और ब्रह्माओं की सृष्टि हुई :—

१ 'प्रथम मूर्ति समरथ कियो घट में सहज उपचार।'
२ तब समरथ के श्रवण ते मूल सुरति भै सार।
शब्द कला ताते भई पाँच ब्रह्म अनुहार॥ (आदि मंगल)

३१—सुन्न

ब्रह्मरंध्र का छिद्र जो (०) विन्दु रूप होता है। इसी से कुण्डलिनी का संयोग होता है। इसी स्थान पर ब्रह्म (आत्मा) का निवास है। योगी जन इसी रंध्र का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। इस छिद्र के छः दरवाज़े हैं, जिन्हें कुण्डलिनी के अतिरिक्त कोई नहीं खोल सकता। प्राणायाम के द्वारा इसे बंद करने का प्रयत्न योगी जन किया करते हैं। इससे हृदय की सभी क्रियाएँ स्थिर हो जाती हैं।

३२—सूर्य

मूलाधार चक्र में चार दलों के बीच में एक गोलाकार स्थान है जिससे सदैव विष का स्राव होता है। इसी स्थान-विशेष का नाम सूर्य है जिससे निकला हुआ विष पिंगला नाड़ी द्वारा प्रवाहित होकर नाक के दाहिनी ओर जाता है और मनुष्य को वृद्ध बनाता है।

३३—सुषुम्ना

इडा और पिंगला नाड़ी के बीच में मेरुदंड के समानान्तर नाड़ी। उसकी छः स्थितियाँ हैं, जहाँ छः चक्र हैं।

३४—हंस

जीव जो नव द्वार के पिंजड़े में बंद रहता है।

(आ) सूफ़ीमत

ज़ात ذات सिफ़त صفت

सूफ़ीमत के अनुसार अहद (परमात्मा) के दो रूप हैं। प्रथम है ज़ात, दूसरा सिफ़त। ज़ात तो 'जानने वाले' के अर्थ में और सिफ़त 'जाना-हुआ' के अर्थ में व्यवहृत होता है। अतएव जानने वाला प्रथम तो अल्लाह है और जाना हुआ है दूसरा मुहम्मद। ज़ात और सिफ़त की शक्तियाँ ही अनंत का निर्माण करती हैं। इन शक्तियों के नाम हैं नज़ूल और उरूज। नज़ूल का तात्पर्य है लय होने से और उरूज का तात्पर्य है उत्पन्न अथवा विकसित होने से। नज़ूल तो ज़ात से उत्पन्न होकर सिफ़त में अंत पाती है और उरूज सिफ़त से उत्पन्न होकर ज़ात में अंत पाती है। ज़ात निषेधात्मक है और सिफ़त गुणात्मक। ज़ात सिफ़त को उत्पन्न कर फिर अपने में लीन कर लेता है। मनुष्य की परिमित बुद्धि ज़ात को सिफ़त से भिन्न, और सिफ़त को ज़ात से स्वतंत्र मानती है।

हक़ حق

सभी धर्मों और विश्वासों का आधार एक सत्य है। उसे सूफ़ीमत में हक़ कहते हैं। उसके अनुसार यह सत्य दो वस्त्रों से आच्छादित है। सिर पर पगड़ी और शरीर पर अंगरखा। पगड़ी रहस्य से निर्मित है जिसका नाम है रहस्यवाद। अंगरखा सत्याचरण से निर्मित है जिसका नाम है धर्म। वह सत्य इन वस्त्रों से इसलिए ढक दिया है, जिससे अज्ञानियों की आँखें उस पर न पड़ें या अज्ञानियों की आँखों में इतनी शक्ति ही नहीं है कि वे उस देदीप्यमान प्रकाश को देख सकें। सत्य का रूप एक ही है पर उसका विवेचन भिन्न-भिन्न भाँति से किया गया है। इसीलिए तो संसार में अनेक धर्मों की उत्पत्ति हुई।

अहद احد

केवल एक शक्ति—ईश्वर।

वहदत وحدت

एकांत अस्तित्व।

इश्क़ عشق

जब अहद अपनी वहदत का अनुभव करता है तो उसके प्यार करने की शक्ति उसे एक दूसरा रूप उत्पन्न करने के लिए बाध्य करती है। इस प्रकार प्रथम स्थिति में अहद आशिक़ बनता है और उसका उत्पन्न हुआ दूसरा रूप माशूक़ है। उत्पन्न हुआ अल्लाह का दूसरा रूप प्रेम में इतनी उन्नति करता है कि वह तो आशिक़ बन जाता है और अल्लाह माशूक़। सूफ़ीमत में अल्लाह माशूक़ है और सूफ़ी आशिक़।

बक़ा بقا

जीवन की पूर्णता ही को बक़ा कहते हैं। यह अल्लाह की वास्तविक स्थिति है। मृत्यु के पश्चात् प्रत्येक जीव को इस स्थिति में आना पड़ता है। जो लोग ईश्वर के प्रेम में अपने को भुला देते हैं वे जीवन में ही बक़ा की स्थिति में पहुँच जाते हैं।

शरियत	شریعت	सूफ़ीमत के अनुसार 'बक़ा' के लिए साधनाएँ
तरीक़त	طریقت	
हक़ीक़त	حقیقت	
मारफ़त	معرفت	

सितारा	ستارہ	तारा	अल्लाह के प्रादुर्भाव के सात रूप
महताब	مہتاب	चन्द्र	
आफ़ताब	آفتاب	सूर्य	
मदनियत	معدنیت	खनिज	
नबातात	نباتات	वनस्पति	
हैवानात	حیوانات	पशु	
इंसान	انسان	मानव	

नासूत ناسوت मलकूत ملکوت जबरूत جبروت लाहूत لاهوت हाहूत هاهوت	मनुष्य अपने ही ज्ञान से ईश्वर की प्राप्ति करने के लिए विकास की इन पाँच स्थितियों से होकर जाता है। प्रत्येक स्थिति उसे आगे की दूसरी स्थिति के योग्य बना देती है। इस प्रकार मनुष्य मानवीय जीवन के निम्नलिखित पाँच आसनों पर क्रमशः आसीन होता जाता है—प्रत्येक का स्वभाव भी अलग अलग होता है।

आदम	آدم	साधारण मनुष्य
इंसान	انسان	ज्ञानी
वली	ولے	पवित्र मनुष्य
क़ुतुब	قطب	महात्मा
नबी	نبی	रसूल

इनके क्रमशः पाँच गुण हैं

अम्मारा	امارہ	इंद्रियों के वश में,
लौवामा	لوامہ	प्रायश्चित करने वाला,
मुतमैन्ना	مطمئنہ	कार्य के प्रथम विचार करने वाला,
आलिम	عالم	जो मन, क्रम, वचन से सत्य है तथा
सालिम	سالم	जो दूसरों के लिए अपने को समर्पित करता है।

तत्त्व

नूर	نور	आकाश,
बाद	باد	वायु,
आतिश	آتش	तेज
आब	آب	जल तथा
ख़ाक	خاک	पृथ्वी

इन तत्त्वों के अनुसार पाँच इन्द्रियाँ भी हैं

१ बसारत	بصارت	देखने की शक्ति	आँख,
२ समाअत	سماعت	सुनने की शक्ति	कान,
३ नगहत	نگہت	सूँघने की शक्ति	नाक,
४ लज्ज़त	لذت	स्वाद लेने की शक्ति	जीभ तथा
५ मुस	مس	स्पर्श करने की शक्ति	त्वचा

इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा रूह मुरशिद की सहायता से वक़ा के लिए अग्रसर होती है।

मुरशिद	مرشد	आध्यात्मिक गुरु या पथप्रदर्शक।
मुरीद	مرید	वह व्यक्ति जो सांसारिक बंधनों से रहित है, बड़ा अध्यवसायी है और श्रद्धा-पूर्वक अपने मुरशिद के आधीन है।

दर्शन और स्वप्न

ख़याली	خیالی	जीवन के विचारों का प्रतिरूप
क़लबी	قلبی	जीवन के विचारों के विपरीत
नक़शी	نقشی	किसी रूपक द्वारा सत्य का निर्देश
रूही	روحی	सत्य का स्पष्ट प्रदर्शन
इलाहामी	الہامی	पत्र अथवा वाणी के रूप में ईश्वरीय संदेश का स्पष्टीकरण।

ग़िज़ाई रूह غذائے روح भोजन (संगीत) के सहारे ही आत्मा परमात्मा के मिलन पथ पर आती है। संगीत में एक प्रकार का कंपन होता है जिससे आध्यात्मिक जीवन के कपन की सृष्टि होती है।

संगीत के पाँच रूप हैं :—

तरब طرب शरीर को संचालित करनेवाला (कलात्मक),
राग راگ मस्तिष्क को प्रसन्न करनेवाला (विज्ञानात्मक),
क़ौल قول भावनाओं को उत्पन्न करनेवाला (भावनात्मक),
निदा ندا दर्शन अथवा स्वरूप में सुन पड़नेवाला (अनुभावात्मक) तथा
सऊत صوت अनंत में सुन पड़नेवाला (आध्यात्मिक)
वजद وجد (Ecstasy) आनंद।
नेवाज़ نیاز इन्द्रियों को वश में करने के लिए साधन।
वजीफ़ा وظیفہ विचारों को वश में करने के लिए साधन।

ध्यानावस्थित होने के पाँच प्रकार

ज़िकर ذکر शारीरिक शुद्धि के लिए,
फ़िकर فکر मानसिक शुद्धि के लिए,
कसब کسب आत्मा को समझने के लिए,
शग़ल شغل परमात्मा में लीन होने के लिए तथा
अमल عمل अपनी सत्ता का नाश कर परमात्मा की सत्ता प्राप्त करने के लिए।

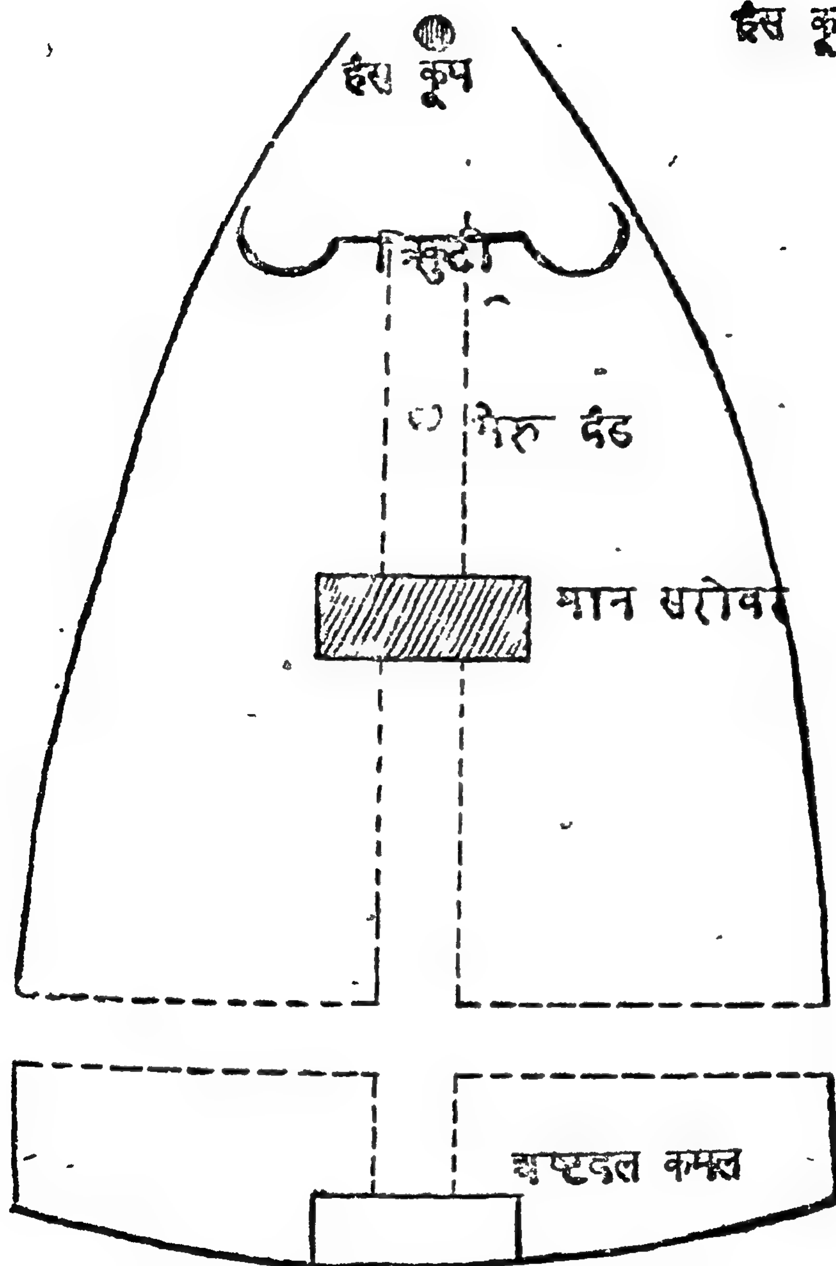
———

घ

हंसकूप

लगभग ८० वर्ष हुए विहार के स्वामी आत्माहंस ने इस हंसतीर्थ की स्थापना की थी। यह बी० एन० डब्लू० रेलवे पर झूँसी में पूर्व की ओर है। तीर्थ का रूप एक विकसित कमल के आकार का है। इसमें इडा, पिंगला और सुषुम्णा नाड़ियों का दिग्दर्शन भली-भाँति कराया गया है। बाईं ओर यमुना के रूप में इडा है और दाहिनी ओर गंगा के रूप में पिंगला। सुषुम्णा का विकास इस स्थान के उत्तरीय कोण में एक कूप में से हुआ है। स्थान के मध्य में एक खंभा है जो मेरुदण्ड का रूप है। उस पर सर्पिणी के समान कुंडलिनी लिपटी हुई है। मेरुदण्ड से आगे एक मंदिर है जिस पर त्रिकुटी लिखा हुआ है। त्रिकुटी के दोनों ओर आँख के आकार के दो ऊँचे स्थल हैं। त्रिकुटी की विरुद्ध दिशा में एक मंदिर है जिसमें अष्टदल कमल की मूर्ति है। कुंडलिनी मेरुदण्ड का सहारा लेकर अन्य चक्रों को पार करती हुई इस अष्टदल कमल में प्रवेश करती है। यह स्थान बहुत रमणीक है। कबीर के हठयोग को समझने के लिए यह तीर्थ अवश्य देखना चाहिए।

हंस कूप तीर्थ



चित्र १

सहायक पुस्तकों की सूची

अंग्रेज़ी

१ मिस्टिसिज़्म

लेखक—इवजिन अंडरहिल

२. दि प्रेसेज़ अव् इंटीरियर प्रेयर

लेखक—आर० पी० पुलेन

अनुवादक—लियोनोरा, एल० यार्कस्मिथ

३. स्टडीज़ इन मिस्टिसिज़्म

लेखक—आर्थर एडवर्ड वेट

४. पर्सनल आइडियलिज़्म एण्ड मिस्टिसिज़्म

लेखक—विलियम रालफ़ इनूज

५. स्टडीज़्म इन हीथेनडम् एण्ड क्रिश्चियनडम्

लेखक—डा० ई० ल्लेमन

अनुवादक—जी० एम० जी० हंट

६. मिस्टिसिकल एलीमेंट इन मोहमेद

लेखक—जान क्लार्क आर्चर

७. दि योग फ़िलासफ़ी

संग्रहकर्ता—भागु० एफ० करभारी

८. दि आइडिया अव् परसोनालिटी इन सूफ़ीज़्म

लेखक—रेनाल्ड ए० निकलसन

९. दि मिस्टिसिज़्म अव् साउंड

लेखक—इनायत ख़ाँ

१०. हिन्दू मेटाफ़िज़िक्स
लेखक—मन्मथनाथ शास्त्री

११. दि मिस्टीरियस कुंडलिनी
लेखक—वसंत जी० रेले

१२. योग
लेखक—जे० एफ़० सी० फुलर

१३. दि पर्शियन मिस्टिक्स (जामी)
लेखक—हेडलेंड डेविस

१४. दि पर्शियन मिस्टिक्स (रूमी)
लेखक—हेडलेंड डेविस

१५ सूफ़ी मैसेज
लेखक—इनायत ख़ाँ

१६. राजयोग
लेखक—मनिलाल नाभू भाई द्विवेदी

१७. कबीर एंड दि कबीर पंथ
लेखक—वेसकट

१८. दि आक्सफ़र्ड बुक अव् मिस्टिकल वर्स
निकलसन और ली (संपादक)

१६. बीजक
अहमदशाह

हिन्दी

१. बीजक श्रीकबीर साहब का
(जिसकी पूर्णदास साहेब, बुरहानपुर नागझरी स्थानवाले ने अपने तीक्ष्ण बुद्धि द्वारा त्रिज्या की है)

२. कबीर ग्रंथावली
संपादक—श्यामसुंदर दास बी० ए०

३. कबीर साहब का पूरा बीजक
पादरी अहमद शाह
४. संतबानी संग्रह १—२
प्रकाशक—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
५. कबीर साहब की ग्यान गुदड़ी रेख़ते और झूलने
(प्रकाशक—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
६. कबीर चरित्र-बोध
युगलानंद द्वारा संशोधित
७. योग-दर्पण
लेखक—कशोमल एम० ए०
८. कबीर वचनावली
अयोध्यसिंह उपाध्याय

फ़ारसी

१. मसनवी
जलालुद्दीन रूमी
२. दीवान-ए शमसी तबरीज़
३. तज़किरातुल औलिया
मुहम्मद अब्दुल अहद (संपादक)
४. दीवान जामी

संस्कृत

१. योग-दर्शन—पतंजलि
२. शिवसंहिता
अनुवादक—श्रीशचंद्र
३. घेरंडसंहिता
अनुवाक—श्रीशचंद्र वसु

कबीर के पदों की अनुक्रमणी

नामानुक्रमणी